ISSN: 3049-2211

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-2 अंक- 6, जून- 2026

Krishakmanch.com

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक
सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
सब्जी विज्ञान विभाग
कृषि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक
शोधार्थी
ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय
पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)।

डा. महेन्द्र कुमार यादव
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. वर्तिका सिंह
सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)
आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

डा. सचि गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (पुष्प विज्ञान)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. रविकेश कुमार पाल
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
रामा विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)।

डा. सरिता
सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. रविशंकर
सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)।

डा. देवेश तिवारी
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)।

डा. कुमार अंशुमान
सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)
के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

डा. मंजीत कुमार
सहायक प्राध्यापक
लिंगायस विद्यापीठ, फरीदाबाद, हरियाणा।

डा. विवेक पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

डा. कल्याण सिंह
स्वतंत्र लेखक
बांदा कृ. एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)।

डा. शिवशंकर पटेल
शोधार्थी
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)।

विषय वस्तु

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1	हरी खाद फसलें: मृदा उर्वरता और टिकाऊ कृषि का आधार	4-7
2	सूखा प्रभावित क्षेत्रों में कृषि तकनीकें और जोखिम न्यूनीकरण उपाय।	8-11
3	फल एवं सब्जी फसलों में स्मार्ट फर्टिगेशन: आधुनिक कृषि के लिए एक प्रभावी तकनीक।	12-13
4	साइलेज: पशुओं के चारे का अचार, पोषण का भंडार।	14-16
5	हर्बल होली रंग: प्राकृतिक रंगों की परंपरा और महत्व।	17-19
6	जीरो एनर्जी कूल चैम्बर: छोटे किसानों के लिए सस्ता और टिकाऊ भंडारण विकल्प।	20-22
7	सब्जी उत्पादन में मल्चिंग का महत्व।	23-24
8	ऊसर से उर्वर: भारत में बंजर भूमि के विकास में समस्याएँ और उपाय।	25-28
9	बायोचार और कार्बन संचयन: जलवायु परिवर्तन से निपटने की एक प्रभावी रणनीति।	29-33
10	जामुन का मूल्य संवर्धन: किसानों की आय बढ़ाने का प्रभावी माध्यम।	34-35

हरी खाद फसलें: मृदा उर्वरता और टिकाऊ कृषि का आधार

आकाश कुमार सैनी- पीएच.डी. शोधार्थी, आईसीएआर–भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान (IISS), भोपाल- मध्य प्रदेश
डॉ. विकास अबरोल- प्रोफेसर, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू- जम्मू एवं कश्मीर

बढ़ती उत्पादन लागत, रासायनिक उर्वरकों पर अत्यधिक निर्भरता तथा मृदा स्वास्थ्य में निरंतर गिरावट के कारण कृषि में टिकाऊ पोषण प्रबंधन की आवश्यकता पहले से अधिक महसूस की जा रही है। ऐसी स्थिति में हरी खाद फसलें मृदा उर्वरता बढ़ाने का एक सरल, सस्ता एवं पर्यावरण-अनुकूल विकल्प प्रदान करती हैं। हरी खाद फसलें मृदा में कार्बनिक पदार्थ, जैविक नाइट्रोजन तथा अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने के साथ-साथ मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक विशेषताओं में सुधार करती हैं।

ढैंचा (*Sesbania aculeata*), सनई (*Crotalaria juncea*), मूंग (*Vigna radiata*), उड़द (*Vigna mungo*), लोबिया (*Vigna unguiculata*) तथा सेंजी (*Melilotus indica*) जैसी दलहनी फसलें हरी खाद के रूप में व्यापक रूप से उपयोग की जाती हैं। राइजोबियम जीवाणुओं के साथ सहजीवी संबंध के कारण ये फसलें वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर मृदा में उपलब्ध कराती हैं। विभिन्न शोध अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि हरी खाद के नियमित उपयोग से मृदा कार्बनिक कार्बन, उपलब्ध नाइट्रोजन तथा सूक्ष्मजीवी गतिविधियों में वृद्धि होती है, जिससे फसल उत्पादकता में 15–30 प्रतिशत तक सुधार संभव है। अतः हरी खाद फसलें न केवल रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम करती हैं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य संरक्षण, पर्यावरणीय संतुलन तथा टिकाऊ कृषि विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

प्रस्तावना

भारत विश्व की प्रमुख कृषि अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, जहाँ कृषि न केवल खाद्य सुरक्षा का आधार है, बल्कि करोड़ों लोगों की आजीविका का प्रमुख स्रोत भी है। बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पिछले कुछ दशकों में कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। हालांकि, इस वृद्धि का एक बड़ा हिस्सा रासायनिक उर्वरकों एवं अन्य बाहरी कृषि आदानों के बढ़ते उपयोग पर आधारित रहा है।

रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित एवं निरंतर उपयोग से अनेक कृषि क्षेत्रों में मृदा स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी, पोषक तत्व असंतुलन, सूक्ष्मजीवी गतिविधियों में गिरावट तथा जल धारण क्षमता में कमी जैसी समस्याएँ आज व्यापक रूप से देखने को मिल रही हैं। अनेक अध्ययनों से संकेत मिलता है कि देश की बड़ी कृषि भूमि में मृदा कार्बनिक कार्बन का स्तर वांछित सीमा से कम है, जो दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता के लिए चुनौती बनता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में हरी खाद फसलें मृदा उर्वरता सुधारने का एक प्रभावी, कम लागत वाला एवं पर्यावरण-अनुकूल विकल्प प्रदान करती हैं। हरी खाद वह प्रक्रिया है जिसमें किसी हरी एवं कोमल फसल को उसके अधिकतम जैवभार उत्पादन की अवस्था में मृदा में पलट दिया

जाता है, ताकि उसके विघटन से प्राप्त पोषक तत्व एवं कार्बनिक पदार्थ मृदा की उर्वरता में वृद्धि कर सकें।

हरी खाद का उपयोग भारतीय कृषि में प्राचीन काल से होता आया है, किंतु आधुनिक कृषि विज्ञान ने इसके लाभों को वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित किया है। दलहनी हरी खाद फसलें वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके मृदा में उपलब्ध कराती हैं, जबकि उनका जैवभार मृदा में कार्बनिक पदार्थ एवं सूक्ष्मजीवी सक्रियता बढ़ाने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त, हरी खाद मृदा संरचना सुधारने, जल धारण क्षमता बढ़ाने, खरपतवार नियंत्रण तथा पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता में वृद्धि करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान समय में जब टिकाऊ कृषि, प्राकृतिक संसाधन संरक्षण एवं जलवायु-स्मार्ट कृषि की अवधारणाएँ प्रमुखता प्राप्त कर रही हैं, तब हरी खाद फसलें कृषि उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य के बीच संतुलन स्थापित करने का एक प्रभावी साधन बनकर उभरी हैं।

हरी खाद क्या है?

हरी खाद (Green Manuring) एक ऐसी कृषि पद्धति है, जिसमें किसी हरी एवं कोमल फसल को उसकी अधिकतम वानस्पतिक वृद्धि अवस्था में खेत में जोतकर मिट्टी में मिला दिया जाता है। इसके विघटन से प्राप्त कार्बनिक पदार्थ एवं पोषक तत्व मृदा की उर्वरता, संरचना तथा जैविक सक्रियता में सुधार करते हैं। हरी खाद को मृदा स्वास्थ्य संवर्धन की सबसे प्रभावी एवं पर्यावरण-अनुकूल तकनीकों में से एक माना जाता है।

हरी खाद मुख्यतः दो प्रकार की होती है:

1. इन-सीटू हरी खाद (In-situ Green Manuring)

इस विधि में हरी खाद फसल को उसी खेत में उगाया जाता है, जहाँ बाद में मुख्य फसल की खेती की जानी होती है। उपयुक्त अवस्था में फसल को खेत में पलटकर मिट्टी में मिला दिया जाता है।

प्रमुख फसलें: ढेंचा, सनई, मूंग, उड़द एवं लोबिया।

2. एक्स-सीटू हरी खाद (Ex-situ Green Manuring)

इस विधि में किसी अन्य स्थान पर उपलब्ध हरी पत्तियाँ, कोमल टहनियाँ अथवा जैविक पदार्थ लाकर खेत में मिलाए जाते हैं।

प्रमुख स्रोत: ग्लिरिसिडिया, नीम, करंज, सुबबूल तथा अन्य वृक्षीय प्रजातियाँ।

दलहनी हरी खाद फसलों की जड़ों में उपस्थित *राइज़ोबियम* जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर उसे पौधों एवं मृदा के लिए उपलब्ध रूप में परिवर्तित करते हैं। इस प्रक्रिया को जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Biological Nitrogen Fixation) कहा जाता है। यही कारण है कि दलहनी फसलें हरी खाद के रूप में सर्वाधिक उपयोगी मानी जाती हैं।

प्रमुख हरी खाद फसलें एवं उनकी विशेषताएँ

भारत की विविध जलवायु परिस्थितियों में अनेक दलहनी एवं गैर-दलहनी फसलें हरी खाद के रूप में प्रयोग की जाती हैं। इनमें ढेंचा एवं सनई सबसे अधिक लोकप्रिय हैं।

तालिका 1. प्रमुख हरी खाद फसलों की विशेषताएँ

फसल	वानस्पतिक नाम	उपयुक्त मौसम	संभावित नाइट्रोजन स्थिरीकरण (कि.ग्रा./हे.)	हरा द्रव्यमान (टन/हे.)	अवधि (दिन)
ढेंचा	*Sesbania aculeata*	खरीफ	80–140	20–30	45–60
सनई	*Crotalaria juncea*	खरीफ	60–120	15–25	50–60
मूंग	*Vigna radiata*	खरीफ/ग्रीष्म	50–100	12–18	45–60
उड़द	*Vigna mungo*	खरीफ	60–120	14–20	50–55
लोबिया	*Vigna unguiculata*	खरीफ	70–120	15–22	45–55
सेंजी	*Melilotus indica*	रबी	40–90	10–15	60–90
बरसीम	*Trifolium alexandrinum*	रबी	100–150	20–30	60–75

1. ढेंचा (Dhaincha)

ढेंचा (*Sesbania aculeata*) भारत की सबसे लोकप्रिय हरी खाद फसल मानी जाती है। यह जलभराव एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता रखती है, इसलिए धान आधारित फसल प्रणालियों में इसका व्यापक उपयोग किया जाता है। इसकी जड़ें गहराई तक जाकर मृदा की कठोर परतों को भेदती हैं, जिससे जल एवं वायु संचरण में सुधार होता है। सामान्यतः 45–60 दिनों में यह पर्याप्त हरा द्रव्यमान एवं नाइट्रोजन उपलब्ध कराती है।

2. सनई (Sunnhemp)

सनई (*Crotalaria juncea*) तीव्र वृद्धि वाली हरी खाद फसल है, जो कम समय में अधिक जैवभार उत्पन्न करती है। इसके उपयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है तथा कुछ परिस्थितियों में सूत्रकृमियों (Nematodes) की संख्या को नियंत्रित करने में भी सहायता मिलती है। गर्म एवं आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में यह अत्यंत उपयुक्त पाई गई है।

मृदा उर्वरता पर हरी खाद का वैज्ञानिक प्रभाव

हरी खाद फसलें मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में व्यापक सुधार करती हैं। इनके अपघटन से प्राप्त कार्बनिक पदार्थ एवं पोषक तत्व मृदा स्वास्थ्य को दीर्घकालिक रूप से सुदृढ़ बनाते हैं।

1. मृदा की भौतिक संरचना में सुधार

हरी खाद के विघटन से ह्यूमस (Humus) का निर्माण होता है, जो मृदा कणों को जोड़कर स्थिर समुच्चय (Aggregates) बनाता है। इसके परिणामस्वरूप:

- मृदा की जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है।
- थोक घनत्व (Bulk Density) में कमी आती है।
- जड़ों का विकास एवं प्रसार बेहतर होता है।
- मृदा में वायु संचार (Aeration) सुधरता है।
- सतही अपवाह एवं मृदा कटाव में कमी आती है।

2. मृदा की रासायनिक उर्वरता में वृद्धि

दलहनी हरी खाद फसलें जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से मृदा में नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ाती हैं। इसके अतिरिक्त इनके अपघटन से फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम एवं अन्य पोषक तत्व धीरे-धीरे मुक्त होकर आगामी फसलों को उपलब्ध होते हैं। गहरी जड़ प्रणाली वाली फसलें मृदा की निचली परतों से पोषक तत्वों को ऊपर लाकर पोषक पुनर्चक्रण (Nutrient Recycling) में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इससे पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है तथा रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है।

3. मृदा की जैविक सक्रियता में वृद्धि

हरी खाद मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाकर लाभकारी सूक्ष्मजीवों की वृद्धि को प्रोत्साहित करती है। जीवाणु, कवक, एक्टिनोमाइसीट्स तथा केंचुओं की सक्रियता बढ़ने से पोषक तत्व चक्रण तेज होता है तथा मृदा की जैविक उर्वरता में सुधार होता है। नियमित रूप से हरी खाद अपनाने से मृदा कार्बनिक कार्बन (SOC) में वृद्धि, सूक्ष्मजीवी जैवभार में सुधार तथा मृदा स्वास्थ्य की दीर्घकालिक स्थिरता बनाए रखने में सहायता मिलती है। यही कारण है कि हरी खाद को टिकाऊ कृषि एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण की महत्वपूर्ण तकनीक माना जाता है।

हरी खाद फसलों की वैज्ञानिक उत्पादन तकनीक

1. भूमि की तैयारी एवं बुआई

हरी खाद फसलों की सफल खेती के लिए विशेष भूमि तैयारी की आवश्यकता नहीं होती। सामान्यतः एक गहरी जुताई एवं एक-दो हल्की जुताइयों के बाद खेत को समतल कर बुआई की जा सकती है। बुआई के समय मृदा में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। दलहनी हरी खाद फसलों के बीजों को उपयुक्त **राइजोबियम कल्चर** से उपचारित करने पर जड़ ग्रंथियों का विकास बेहतर होता है तथा जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता बढ़ती है।

2. हरी खाद पलटने का उपयुक्त समय

हरी खाद फसल को सामान्यतः **40–60 दिन की अवस्था अथवा लगभग 50 प्रतिशत पुष्पन अवस्था** में खेत में पलटना सर्वोत्तम माना जाता है। इस समय पौधों में पोषक तत्वों की मात्रा अधिक होती है तथा उनका अपघटन अपेक्षाकृत शीघ्र होता है। पलटाई के बाद खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखना आवश्यक है ताकि जैविक पदार्थों का विघटन सुचारू रूप से हो सके। मुख्य फसल की बुआई अथवा रोपाई सामान्यतः 2–3 सप्ताह बाद करना उपयुक्त माना जाता है।

3. राइजोबियम कल्चर द्वारा बीजोपचार

राइजोबियम जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों पर ग्रंथियाँ बनाकर वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधों के लिए उपलब्ध रूप में परिवर्तित करते हैं।

बीजोपचार की सामान्य विधि:

- अनुशंसित मात्रा में राइजोबियम कल्चर लें।
- गुड़ अथवा चिपकाने वाले घोल की सहायता से बीजों पर समान रूप से लगाएँ।
- उपचारित बीजों को छाया में सुखाएँ।
- उपचार के बाद शीघ्र बुआई करें।
- उपचारित बीजों को प्रत्यक्ष धूप से बचाएँ।

एकीकृत पोषण प्रबंधन (INM) में हरी खाद की भूमिका

एकीकृत पोषण प्रबंधन (Integrated Nutrient Management – INM) में हरी खाद की महत्वपूर्ण भूमिका है। हरी खाद, जैव उर्वरकों एवं रासायनिक उर्वरकों के समन्वित उपयोग से मृदा

ISSN: 3049-2211

स्वास्थ्य में सुधार के साथ-साथ पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता भी बढ़ती है।

आर्थिक लाभ एवं हरी खाद अपनाने की प्रमुख चुनौतियाँ

श्रेणी	प्रमुख बिंदु
हरी खाद के आर्थिक एवं कृषि लाभ	1. नाइट्रोजन उर्वरकों की आवश्यकता में आंशिक कमी 2. मृदा कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि 3. जल धारण क्षमता में सुधार 4. फसल उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि 5. दीर्घकालिक मृदा स्वास्थ्य संरक्षण 6. टिकाऊ कृषि उत्पादन प्रणाली का विकास
हरी खाद अपनाने की प्रमुख चुनौतियाँ	1. छोटे एवं सीमांत किसानों के पास भूमि की सीमित उपलब्धता 2. कुछ क्षेत्रों में सिंचाई जल की कमी 3. हरी खाद फसल के लिए अतिरिक्त समय की आवश्यकता 4. पलटाई एवं खेत प्रबंधन हेतु श्रम एवं मशीनरी की आवश्यकता 5. दीर्घकालिक लाभों की तुलना में तात्कालिक आर्थिक लाभ कम दिखाई देना

सरकारी योजनाएँ एवं प्रोत्साहन

भारत सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारें जैविक एवं टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने के लिए अनेक योजनाएँ संचालित कर रही हैं, जिनमें हरी खाद का उपयोग भी प्रोत्साहित किया जाता है।

प्रमुख योजनाएँ

1. परम्परागत कृषि विकास योजना (PKVY)
2. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (NFSM)
3. राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन (NMSA)
4. मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना (SHC)
5. जैविक एवं प्राकृतिक खेती प्रोत्साहन कार्यक्रम

किसान अपने क्षेत्र के कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) एवं कृषि विश्वविद्यालयों से इन योजनाओं की अद्यतन जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष

हरी खाद फसलें मृदा स्वास्थ्य सुधारने, कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाने तथा टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने का एक प्रभावी और किफायती साधन हैं। ढैंचा, सनई, मूँग एवं अन्य दलहनी हरी खाद फसलें वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके मृदा की उर्वरता बढ़ाती हैं तथा रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम करती हैं। इनके उपयोग से मृदा की भौतिक संरचना, जलधारण क्षमता, सूक्ष्मजीवी गतिविधियाँ एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार होता है। साथ ही, फसल उत्पादन की स्थिरता एवं पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान मिलता है। वर्तमान समय में मृदा स्वास्थ्य संरक्षण एवं सतत कृषि विकास के लिए हरी खाद को फसल चक्र, जैव उर्वरकों तथा संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन के साथ एकीकृत रूप से अपनाना आवश्यक है। यह कृषि को अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं संसाधन-संरक्षण आधारित बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

"हरी खाद अपनाएँ, मिट्टी को जीवंत बनाएँ और टिकाऊ कृषि की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम बढ़ाएँ।"

*****

सूखा प्रभावित क्षेत्रों में कृषि तकनीकें और जोखिम न्यूनीकरण उपाय

[1]**सिद्धार्थ मिश्रा-** शोध छात्र
[2]**डॉ. ऐ.के सिंह-** प्राध्यापक, सस्य विज्ञान संकाय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या-224229 (उ0प्र0)

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ लगभग आधी से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। परंतु जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, भूजल स्तर में गिरावट तथा बढ़ते तापमान के कारण देश के अनेक क्षेत्र सूखे की समस्या से प्रभावित हो रहे हैं। विशेष रूप से राजस्थान, बुंदेलखंड, विदर्भ, मराठवाड़ा तथा दक्षिण भारत के कुछ भाग नियमित रूप से सूखे की मार झेलते हैं। सूखा केवल पानी की कमी नहीं है, बल्कि यह कृषि उत्पादन, पशुपालन, ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा खाद्य सुरक्षा पर गंभीर प्रभाव डालता है। ऐसी परिस्थितियों में आधुनिक कृषि तकनीकों तथा जोखिम न्यूनीकरण उपायों को अपनाकर खेती को अधिक टिकाऊ और लाभकारी बनाया जा सकता है। सूखा प्रभावित क्षेत्रों में जल संरक्षण, सूखा सहनशील फसलें, आधुनिक सिंचाई तकनीक तथा कृषि विविधीकरण अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सूखा प्रभावित क्षेत्रों की प्रमुख समस्याएँ

1. वर्षा की अनिश्चितता- शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में औसत वर्षा सामान्यतः 300-750 मिमी के बीच होती है, परंतु इसका वितरण अत्यंत अनियमित रहता है। भारत में लगभग 68 प्रतिशत कृषि क्षेत्र मानसून पर निर्भर है। वर्षा में 15-20 प्रतिशत की कमी होने पर फसल उत्पादन में 30-40 प्रतिशत तक गिरावट देखी जाती है। वैज्ञानिकों के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा एवं अत्यधिक वर्षा की घटनाएँ बढ़ रही हैं। समय पर वर्षा न होने से बीज अंकुरण, पोषक तत्व अवशोषण

तथा पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है, जिससे किसानों की आय और खाद्य सुरक्षा दोनों पर प्रभाव पड़ता है।

2. मृदा में नमी की कमी- उच्च तापमान और तीव्र वाष्पीकरण के कारण शुष्क क्षेत्रों में प्रतिदिन 5-8 मिमी तक नमी की हानि हो सकती है। इन क्षेत्रों की मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ प्रायः 0.2-0.5 प्रतिशत तक ही पाए जाते हैं, जिससे जल धारण क्षमता कम रहती है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार मिट्टी में नमी की 50 प्रतिशत से अधिक कमी होने पर पौधों में जल तनाव उत्पन्न हो जाता है। इससे प्रकाश संश्लेषण, जड़ वृद्धि तथा पोषक तत्वों का अवशोषण प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप फसल उत्पादन में 20-50 प्रतिशत तक कमी देखी जा सकती है।

3. भूजल स्तर में गिरावट- भारत विश्व में भूजल का सबसे अधिक उपयोग करने वाले देशों में शामिल है, जहाँ लगभग 62 प्रतिशत सिंचाई भूजल पर निर्भर है। केंद्रीय भूजल बोर्ड के अनुसार कई राज्यों में भूजल स्तर प्रतिवर्ष 0.5-1 मीटर तक नीचे जा रहा है। अत्यधिक दोहन तथा वर्षा जल पुनर्भरण की कमी इसके मुख्य कारण हैं। भूजल स्तर नीचे जाने से सिंचाई लागत 20-30 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। कई क्षेत्रों में जल की लवणीयता भी बढ़ रही है, जिससे मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित होती है और कृषि उत्पादन में कमी आती है।

4. फसल हानि- जल की कमी के कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण तथा भोजन निर्माण की प्रक्रिया धीमी हो जाती है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार फसल की महत्वपूर्ण अवस्थाओं पर सूखा पड़ने से उत्पादन में 30-70 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। धान में जल तनाव के कारण उपज लगभग 40 प्रतिशत तक घट सकती है, जबकि गेहूँ में 20-30 प्रतिशत कमी देखी जाती है। लंबे समय तक सूखे की स्थिति में पौधों का तुर्गदाब कम हो जाता है, जिससे पौधे मुरझाने लगते हैं। इससे खाद्य सुरक्षा और किसानों की आर्थिक स्थिति दोनों प्रभावित होती हैं।

5. पशुपालन पर प्रभाव- सूखे के कारण चारागाहों में हरे चारे की उपलब्धता 40-60 प्रतिशत तक घट जाती है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार जल और पोषण की कमी से दुग्ध उत्पादन में 15-25 प्रतिशत तक गिरावट हो सकती है। अत्यधिक तापमान के कारण पशुओं में हीट स्ट्रेस बढ़ता है, जिससे उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। कई क्षेत्रों में जल स्रोत सूखने से पशुओं को प्रतिदिन आवश्यक 40-60 लीटर पानी भी उपलब्ध नहीं हो पाता। इससे पशुधन की वृद्धि, प्रजनन क्षमता तथा किसानों की अतिरिक्त आय पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सूखा प्रभावित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त कृषि तकनीकें

1. जल संरक्षण तकनीकें - जल संरक्षण सूखा प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण आधार है।

(क) वर्षा जल संचयन- वर्षा के पानी को तालाब, खेत पोखर, चेक डैम तथा टैंकों में संग्रहित किया जाता है।

लाभ

- ✓ सिंचाई के लिए अतिरिक्त जल उपलब्ध होता है।
- ✓ भूजल पुनर्भरण में सहायता मिलती है।
- ✓ सूखे की स्थिति में फसल बचाई जा सकती है।

2. सूक्ष्म सिंचाई तकनीक

(क) ड्रिप सिंचाई - यह ''ड्रिप सिंचाई'' की विशेषता है, जिसमें पानी को पाइप, लैटरल और एमिटर की सहायता से सीधे पौधों की जड़ों के पास बूंद-बूंद करके पहुंचाया जाता है। इस विधि में जल केवल जड़ क्षेत्र में उपलब्ध होता है, इसलिए वाष्पीकरण, बहाव और गहरी रिसाव हानि बहुत कम हो जाती है। इससे फसल को आवश्यकतानुसार नमी मिलती रहती है, पौधों की वृद्धि समान रूप से होती है और जल का वैज्ञानिक प्रबंधन संभव होता है।

लाभ-

- ✓ **''40-60 प्रतिशत तक जल की बचत''** होती है, क्योंकि पानी सीधे जड़ों तक पहुंचता है।
- ✓ **''खरपतवार कम उगते हैं''** क्योंकि खेत के पूरे भाग में नमी नहीं फैलती।
- ✓ **''उर्वरकों का कुशल उपयोग''** होता है, क्योंकि फर्टिगेशन द्वारा पोषक तत्व सीधे जड़ क्षेत्र में दिए जा सकते हैं।
- ✓ **''उपज में सुधार''** होता है, क्योंकि पौधों को नियमित नमी मिलती रहती है।
- ✓ **''मृदा अपरदन कम''** होता है और भूमि की संरचना सुरक्षित रहती है।

(ख) फव्वारा सिंचाई- फव्वारा सिंचाई में पानी को पाइप एवं स्प्रिंकलर नोजल द्वारा वर्षा की बूंदों की तरह खेत में फैलाया जाता है। यह प्रणाली प्राकृतिक वर्षा के समान कार्य करती है और खेत में समान नमी बनाए रखती है। यह विशेष रूप से रेतीली, हल्की तथा ऊँची-नीची भूमि के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इस विधि में जल उपयोग दक्षता लगभग 70-85 प्रतिशत तक होती है तथा 30-40 प्रतिशत जल की बचत संभव

होती है। भूमि समतलीकरण की आवश्यकता कम पड़ती है और मृदा अपरदन भी घटता है। गेहूँ, सब्जियाँ, चारा एवं बागवानी फसलों में इसका उपयोग अत्यंत लाभकारी माना जाता है। स्प्रिंकलर प्रणाली को सही प्रकार से चलाने के लिए सामान्यतः 2 से 4 किलोग्राम प्रति वर्ग सेंटीमीटर की आवश्यकता होती है।

मृदा नमी संरक्षण तकनीकें

1. मल्चिंग- फसल अवशेष, पुआल, सूखी घास अथवा प्लास्टिक से मिट्टी की सतह को ढकने की प्रक्रिया को मल्चिंग कहा जाता है। यह मृदा एवं जल संरक्षण की महत्वपूर्ण तकनीक है। मल्च मिट्टी को सीधे सूर्य की किरणों से बचाता है, जिससे वाष्पीकरण कम होता है और नमी लंबे समय तक बनी रहती है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार मल्चिंग से 25-50 प्रतिशत तक जल संरक्षण संभव है। यह तकनीक खरपतवार नियंत्रण में भी सहायक होती है तथा मिट्टी का तापमान संतुलित बनाए रखती है। शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में मल्चिंग द्वारा फसल वृद्धि, उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य में सुधार देखा जाता है।

सूखा सहनशील फसलें

फसल	उन्नत किस्में	विशेषता
बाजरा	HHB-67, ICTP 8203	कम पानी में उत्पादन
ज्वार	CSV 15, CSV 23	सूखा सहनशील
अरहर	Pusa 992, ICPL-88039 (Asha)	गहरी जड़ प्रणाली
मूंग	Samrat, IPM 02-3	सूखा सहनशील एवं उच्च उत्पादन क्षमता।
चना	JG 11, Pusa 372	कम सिंचाई की आवश्यकता

2. गहरी जुताई- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई से मिट्टी में वर्षा जल का संचयन बढ़ता है।

3. कंटूर खेती- ढाल वाली भूमि पर समोच्च रेखाओं के अनुसार जुताई एवं खेती करने की विधि को समोच्च रेखीय खेती कहा जाता है। इस तकनीक में वर्षा जल का बहाव धीमा हो जाता है, जिससे मिट्टी और पानी का संरक्षण होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह मृदा अपरदन नियंत्रण की प्रभावी विधि मानी जाती है। समोच्च रेखीय खेती द्वारा उपजाऊ मिट्टी सुरक्षित रहती है तथा वर्षा जल भूमि में अधिक मात्रा में समाहित होता है। यह तकनीक विशेष रूप से पहाड़ी एवं ढालदार क्षेत्रों में उपयोगी मानी जाती है और मृदा नमी बनाए रखने में सहायता करती है।

4. फसल विविधीकरण- एक ही फसल पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न फसलों एवं कृषि गतिविधियों को अपनाने की प्रणाली को विविधीकृत कृषि प्रणाली कहा जाता है। इसमें अनाज एवं दलहन उत्पादन, फसल के साथ पशुपालन तथा कृषि के साथ बागवानी को सम्मिलित किया जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से यह प्रणाली कृषि जोखिम को कम करने में सहायक होती है, क्योंकि किसी एक फसल के नुकसान की स्थिति में अन्य स्रोतों से आय प्राप्त होती रहती है। यह तकनीक विशेष रूप से सूखा प्रभावित क्षेत्रों में उपयोगी मानी जाती है। विविधीकृत कृषि प्रणाली से किसानों को आय के अनेक स्रोत प्राप्त होते हैं, सूखे की स्थिति में नुकसान कम होता है तथा मृदा की उर्वरता और पोषक संतुलन में सुधार होता है।

5. कृषि वानिकी- खेती के साथ पेड़ लगाने की प्रणाली को कृषि वानिकी कहा जाता है। इसमें नीम, करंज, बबूल तथा सहजन जैसे वृक्ष लगाए जाते हैं। यह तकनीक मृदा एवं जल संरक्षण में सहायक होती है तथा भूमि की उर्वरता बनाए रखती है। वैज्ञानिक दृष्टि से वृक्षों की जड़ें मिट्टी कटाव को रोकती हैं और जैव विविधता बढ़ाती हैं। कृषि वानिकी से किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है तथा चारा, ईंधन एवं लकड़ी की उपलब्धता भी सुनिश्चित होती है।

आधुनिक तकनीकों का उपयोग

1. मौसम आधारित कृषि- मौसम पूर्वानुमान के आधार पर बुवाई और सिंचाई का निर्णय लिया जाता है।

2. मोबाइल एवं डिजिटल सेवाएँ- किसानों को मोबाइल ऐप और संदेशों के माध्यम से मौसम तथा कृषि सलाह दी जाती है।

3. सेंसर आधारित सिंचाई- मिट्टी की नमी मापकर आवश्यकतानुसार सिंचाई की जाती है।

जोखिम न्यूनीकरण उपाय

1. फसल बीमा

- ✓ प्राकृतिक आपदा के समय किसानों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है।
- ✓ भारत सरकार की प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना किसानों के लिए महत्वपूर्ण है।

2. बीज भंडारण- कम अवधि तथा सूखा सहनशील बीजों का भंडारण आवश्यक है।

3. सामुदायिक जल प्रबंधन- गाँव स्तर पर जल संरक्षण संरचनाओं का सामूहिक निर्माण लाभकारी होता है।

4. वैकल्पिक रोजगार- कृषि के साथ डेयरी, बकरी पालन, मुर्गी पालन आदि अपनाने से जोखिम कम होता है।

पशुपालन आधारित जोखिम प्रबंधन

पशुपालन प्रबंधन- सूखा प्रभावित क्षेत्रों में पशुपालन किसानों की आय का महत्वपूर्ण स्रोत बन सकता है। ऐसी परिस्थितियों में सूखा सहनशील

चारा फसलों का उत्पादन करना लाभकारी माना जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से नेपियर घास, बरसीम तथा ज्वार जैसी चारा फसलें कम पानी में भी अच्छी वृद्धि करती हैं। चारे की कमी से बचने हेतु साइलेज निर्माण उपयोगी तकनीक है, जिसमें हरे चारे को सुरक्षित रखा जाता है। पशुओं के लिए उचित जल प्रबंधन भी आवश्यक है, क्योंकि पर्याप्त स्वच्छ पानी पशुओं की वृद्धि, दुग्ध उत्पादन तथा स्वास्थ्य बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सरकारी योजनाएँ और पहल

1. प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना- "हर खेत को पानी" उद्देश्य के साथ सूक्ष्म सिंचाई को बढ़ावा दिया जा रहा है।

2. मनरेगा- तालाब, चेक डैम और जल संरक्षण कार्यों में सहायता मिलती है।

3. राष्ट्रीय कृषि विकास योजना- सूखा प्रबंधन तकनीकों के प्रसार में सहायक।

सूखा प्रबंधन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण

1. जल बजटिंग- किस क्षेत्र में कितना जल उपलब्ध है तथा कितना उपयोग करना चाहिए, इसका वैज्ञानिक आकलन आवश्यक है।

2. जलवायु स्मार्ट कृषि- ऐसी कृषि प्रणाली अपनाई जाती है जो कम पानी में अधिक उत्पादन दे सके।

किसानों के लिए महत्वपूर्ण सुझाव

किसानों को समय पर बुवाई करनी चाहिए ताकि फसल को अनुकूल तापमान एवं नमी मिल सके। कम अवधि वाली एवं सूखा सहनशील किस्मों का चयन करने से कम वर्षा की स्थिति में भी बेहतर उत्पादन प्राप्त होता है। जल संरक्षण हेतु ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई अपनाना लाभकारी माना जाता है। खेत में मेड़बंदी करने से वर्षा जल संरक्षण तथा मृदा कटाव नियंत्रण में सहायता मिलती है। जैविक पदार्थों एवं जैविक खादों का अधिक उपयोग मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ाता है। किसानों को मौसम पूर्वानुमान का पालन करना चाहिए तथा प्राकृतिक आपदाओं से आर्थिक सुरक्षा हेतु फसल बीमा अवश्य कराना चाहिए।

निष्कर्ष

सूखा प्रभावित क्षेत्रों में कृषि करना चुनौतीपूर्ण अवश्य है, लेकिन वैज्ञानिक तकनीकों और उचित जोखिम न्यूनीकरण उपायों द्वारा इसे सफल बनाया जा सकता है। जल संरक्षण, सूक्ष्म सिंचाई, सूखा सहनशील फसलें, फसल विविधीकरण तथा आधुनिक कृषि तकनीकें किसानों की आय और उत्पादन को स्थिर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भविष्य में जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों को देखते हुए जलवायु-स्मार्ट कृषि, सामुदायिक जल प्रबंधन और आधुनिक तकनीकों का व्यापक उपयोग अत्यंत आवश्यक होगा। यदि किसान, वैज्ञानिक और सरकार मिलकर कार्य करें, तो सूखा प्रभावित क्षेत्रों में भी टिकाऊ एवं लाभकारी कृषि संभव है।

♣♣♣

फल एवं सब्जी फसलों में स्मार्ट फर्टिगेशन: आधुनिक कृषि के लिए एक प्रभावी तकनीक

[1]माजिद खान एवं [2]शेख मोहम्मद अमान
शोध छात्र, एम.एससी. बागवानी (सब्जी विज्ञान)
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट, मध्य प्रदेश, भारत

वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र जल की कमी, बढ़ती उत्पादन लागत तथा पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। ऐसे में किसानों को ऐसी तकनीकों की आवश्यकता है जो कम संसाधनों में अधिक उत्पादन प्राप्त करने में सहायता कर सकें। स्मार्ट फर्टिगेशन ऐसी ही एक आधुनिक तकनीक है, जिसमें सिंचाई एवं उर्वरक प्रबंधन को डिजिटल तकनीकों के साथ जोड़कर अधिक प्रभावी बनाया जाता है। यह तकनीक फसल की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार जल एवं पोषक तत्व उपलब्ध कराती है, जिससे उत्पादन बढ़ता है तथा संसाधनों का संरक्षण होता है। फल एवं सब्जी फसलों में स्मार्ट फर्टिगेशन का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है और यह सतत कृषि विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जा रहा है।

परिचय

कृषि उत्पादन मुख्य रूप से जल एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। पारंपरिक खेती में अक्सर सिंचाई और उर्वरक प्रबंधन अनुमान के आधार पर किया जाता है, जिसके कारण जल एवं उर्वरकों की बर्बादी होती है। इसके अलावा अत्यधिक उर्वरक उपयोग से मिट्टी की गुणवत्ता और पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पिछले कुछ वर्षों में सटीक कृषि की अवधारणा ने कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। इसी क्रम में स्मार्ट फर्टिगेशन तकनीक किसानों के लिए एक उपयोगी विकल्प बनकर उभरी है। यह प्रणाली सेंसर, इंटरनेट ऑफ थिंग्स तथा स्वचालित नियंत्रण प्रणालियों की सहायता से फसलों की आवश्यकता के अनुसार जल एवं उर्वरकों की आपूर्ति सुनिश्चित करती है।

स्मार्ट फर्टिगेशन का महत्व

फल एवं सब्जी फसलें उच्च मूल्य वाली फसलें हैं तथा इनके उत्पादन और गुणवत्ता पर पोषक तत्वों एवं जल प्रबंधन का सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि इन फसलों को सही समय पर उचित मात्रा में पानी और

ISSN: 3049-2211

पोषक तत्व उपलब्ध कराए जाएँ, तो उनकी वृद्धि एवं उत्पादन में उल्लेखनीय सुधार देखा जा सकता है।

स्मार्ट फर्टिगेशन की सहायता से किसान मृदा की नमी तथा पोषक तत्वों की स्थिति का वास्तविक समय में आकलन कर सकते हैं। इसके आधार पर सिंचाई एवं उर्वरक प्रबंधन अधिक वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है। इससे न केवल उत्पादन बढ़ता है बल्कि उत्पादन लागत में भी कमी आती है।

फल एवं सब्जी उत्पादन में उपयोगिता

आम, केला, अंगूर और अनार जैसी फल फसलों में स्मार्ट फर्टिगेशन का उपयोग बेहतर फल विकास, उच्च गुणवत्ता तथा अधिक उत्पादन प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार टमाटर, खीरा, शिमला मिर्च और बैंगन जैसी सब्जी फसलों में यह तकनीक संतुलित पोषण प्रदान कर उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों को बढ़ाती है।

विशेष रूप से संरक्षित खेती (पॉलीहाउस एवं नेट हाउस) में स्मार्ट फर्टिगेशन का उपयोग अधिक प्रभावी माना जाता है क्योंकि वहाँ जल एवं पोषक तत्वों का सटीक प्रबंधन अत्यंत आवश्यक होता है।

लाभ

स्मार्ट फर्टिगेशन के अनेक लाभ हैं। यह जल एवं उर्वरकों के उपयोग की दक्षता बढ़ाता है, फसल उत्पादन में वृद्धि करता है तथा पर्यावरण प्रदूषण को कम करता है। इसके अतिरिक्त यह श्रम लागत को कम करने तथा किसानों की आय बढ़ाने में भी सहायक है। जल संरक्षण के वर्तमान दौर में यह तकनीक कृषि को अधिक टिकाऊ और लाभकारी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

निष्कर्ष

स्मार्ट फर्टिगेशन आधुनिक कृषि की एक महत्वपूर्ण एवं उन्नत तकनीक है, जो जल एवं पोषक तत्वों के वैज्ञानिक तथा कुशल प्रबंधन के माध्यम से फल एवं सब्जी फसलों के उत्पादन, गुणवत्ता तथा लाभप्रदता में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकती है। यह तकनीक फसलों की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार सिंचाई एवं उर्वरकों की आपूर्ति सुनिश्चित करती है, जिससे जल, उर्वरकों एवं अन्य संसाधनों का अधिकतम उपयोग संभव हो पाता है। परिणामस्वरूप उत्पादन लागत में कमी आती है तथा किसानों की आय में वृद्धि होती है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, जल संसाधनों की कमी, बढ़ती जनसंख्या तथा खाद्य सुरक्षा जैसी चुनौतियों के बीच कृषि क्षेत्र को अधिक दक्ष और टिकाऊ बनाने की आवश्यकता है। ऐसे परिदृश्य में स्मार्ट फर्टिगेशन तकनीक एक प्रभावी समाधान के रूप में उभरकर सामने आई है। यह न केवल जल संरक्षण में सहायक है, बल्कि पोषक तत्वों के अपव्यय को भी कम करती है तथा पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने में योगदान देती है। इसके अतिरिक्त, यह तकनीक पौधों की वृद्धि, उपज एवं उत्पाद की गुणवत्ता को बेहतर बनाकर किसानों को आर्थिक लाभ प्रदान करती है।

*****

साइलेज: पशुओं के चारे का अचार, पोषण का भंडार

डॉ प्रवीण पिलानिया एवं डॉ प्रवीण कुमार हटवाल- सहायक आचार्य, कृषि महाविद्यालय, कोटपुतली,
डॉ विष्णु शंकर मीणा- सहायक आचार्य कृषि महाविद्यालय, झिलाई, टोंक (श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर)

पशुपालन की सफलता का आधार: संतुलित पोषण

भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है। देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशुपालन की महत्वपूर्ण भूमिका है। राजस्थान सहित देश के कई राज्यों में लाखों किसान अपनी आय का प्रमुख स्रोत पशुपालन को मानते हैं। बावजूद इसके, अधिकांश क्षेत्रों में प्रति पशु दूध उत्पादन अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँच पाता। इसका मुख्य कारण पशुओं को वर्षभर पर्याप्त एवं संतुलित हरा चारा उपलब्ध नहीं हो पाना है।

वर्षा ऋतु में खेतों में हरे चारे की भरपूर उपलब्धता रहती है, लेकिन गर्मी और सर्दी के मौसम में इसकी कमी हो जाती है। ऐसे समय में पशुओं को केवल सूखा चारा खिलाना पड़ता है, जिससे दूध उत्पादन और पशुओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस समस्या का सबसे प्रभावी समाधान है – **साइलेज निर्माण**, जिसे सरल भाषा में "पशुओं के चारे का अचार" भी कहा जाता है।

साइलेज : एक परिचय

क्या है साइलेज?

साइलेज हरे चारे को लंबे समय तक सुरक्षित रखने की वैज्ञानिक विधि है। इसमें हरे एवं रसदार चारे को हवा रहित (Anaerobic) वातावरण में दबाकर रखा जाता है, जिससे उसमें प्राकृतिक किण्वन (Fermentation) होता है और वह कई महीनों तक पौष्टिक बना रहता है।

जैसे हम फल-सब्जियों का अचार बनाकर लंबे समय तक उपयोग करते हैं, उसी प्रकार हरे चारे का संरक्षण करके साइलेज तैयार किया जाता है। यही कारण है कि इसे पशुओं के चारे का अचार कहा जाता है और तैयार चारे को पशुओं को वर्षभर खिलाया जाता है।

साइलेज क्यों आवश्यक है?

आज बदलती जलवायु, अनियमित वर्षा और बार-बार आने वाले सूखे की परिस्थितियों में पशुओं के लिए वर्षभर हरे चारे की व्यवस्था करना चुनौतीपूर्ण हो गया है। साइलेज निर्माण से किसान वर्षा ऋतु में उपलब्ध अतिरिक्त हरे चारे को संरक्षित कर सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग कर सकते हैं।

साइलेज विशेष रूप से निम्न परिस्थितियों में अत्यंत उपयोगी है:

- सूखा एवं अकाल की स्थिति में
- गर्मी के मौसम में हरे चारे की कमी होने पर
- दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए
- व्यावसायिक डेयरी फार्मों में
- पशुओं को संतुलित आहार उपलब्ध कराने हेतु

साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त फसलें

अच्छा साइलेज बनाने के लिए ऐसी फसलों का चयन करना चाहिए जिनमें घुलनशील कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में हो।

प्रमुख फसलें

- मक्का, ज्वार, बाजरा, नैपियर घास, गिनी घास आदि।
- दलहनी चारा फसलें (मिश्रण के रूप में)

मक्का और ज्वार को साइलेज निर्माण के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है क्योंकि इनमें प्राकृतिक शर्करा अधिक होती है, जो किण्वन प्रक्रिया को बेहतर बनाती है।

साइलेज बनाने का सही समय

चारा फसल में लगभग 30–35 प्रतिशत शुष्क पदार्थ (Dry Matter) होना चाहिए।

- मक्का एवं ज्वार को दूधिया से गूंथे दाने (Milk to Dough Stage) पर काटना उचित रहता है।
- जब फसल में लगभग 50 प्रतिशत फूल आ जाएँ तब भी कटाई की जा सकती है।
- चारे में नमी की मात्रा लगभग 65–70 प्रतिशत होनी चाहिए।

विशेषज्ञ सलाह देते हैं कि चारे की कटाई शाम के समय की जाए, क्योंकि इस समय पौधों में घुलनशील शर्करा की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है।

साइलेज बनाने की वैज्ञानिक विधि

1. चारे की कटाई- उपयुक्त अवस्था में चारे को काटें।

2. कुट्टी करना- चारे को 1 से 2 सेंटीमीटर लंबाई में काटें। इससे दबाव अच्छी तरह बनता है और किण्वन प्रक्रिया बेहतर होती है।

3. साइलो तैयार करना- साइलेज निर्माण के लिए निम्न साधनों का उपयोग किया जा सकता है:

- साइलो पिट (गड्ढा)
- साइलो टैंक
- साइलो बैग
- ट्रेंच साइलो

4. चारा भरना एवं दबाना- कटे हुए चारे को परत-दर-परत भरकर अच्छी तरह दबाएँ ताकि भीतर की हवा पूरी तरह निकल जाए।

5. शीरा या एडिटिव मिलाना- यदि चारे में शर्करा कम हो तो 2–4 प्रतिशत शीरा (Molasses) मिलाया जा सकता है।

घास आधारित साइलेज में:

- 0.5–1 प्रतिशत यूरिया
- 4–5 ग्राम प्रति किलोग्राम शुष्क पदार्थ एंजाइम

मिलाकर पोषण गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है।

6. वायुरोधी बंद करना- साइलो को मोटी प्लास्टिक शीट से पूरी तरह ढककर मिट्टी से सील कर दें ताकि हवा और पानी अंदर प्रवेश न कर सकें।

7. किण्वन अवधि- सामान्यतः 30–45 दिनों में उच्च गुणवत्ता वाला साइलेज तैयार हो जाता है।

अच्छे साइलेज की पहचान

उत्तम साइलेज में निम्न विशेषताएँ होती हैं:

- हल्का हरा या सुनहरा पीला रंग
- सुखद खट्टी गंध
- फफूंद रहित
- मुलायम एवं रसदार बनावट
- पशुओं द्वारा आसानी से खाया जाना

यदि साइलेज काला, बदबूदार या फफूंदयुक्त हो तो उसे पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए।

साइलेज की भंडारण क्षमता

उचित तरीके से तैयार और सुरक्षित रखा गया साइलेज 1 से 2 वर्ष तक सुरक्षित रह सकता है। एक घन मीटर क्षमता वाले साइलो में लगभग 400–500 किलोग्राम साइलेज संग्रहित किया जा सकता है। यदि एक पशु को प्रतिदिन 15 किलोग्राम साइलेज खिलाया जाए तो एक घन मीटर साइलेज लगभग एक माह तक पर्याप्त हो सकता है।

पशुओं को साइलेज खिलाने की अनुशंसित मात्रा

पशु	मात्रा (किलोग्राम/दिन)
गाय	16–20
भैंस	20–22
बैल	10–14
बछड़ा	0.5–2

साइलेज को दूध दुहने के बाद खिलाना चाहिए ताकि दूध में उसकी गंध न आए।

साइलेज के प्रमुख लाभ

1. वर्षभर हरे चारे की उपलब्धता: पशुओं को हर मौसम में पौष्टिक एवं रसदार चारा मिलता है।

2. दूध उत्पादन में वृद्धि: संतुलित पोषण मिलने से दुग्ध उत्पादन और गुणवत्ता दोनों बढ़ते हैं।

3. पोषक तत्वों की कम हानि: अन्य संरक्षण विधियों की तुलना में पोषक तत्व अधिक सुरक्षित रहते हैं।

4. सूखा और अकाल में सहायक: चारे की कमी के समय साइलेज जीवनरक्षक सिद्ध होता है।

5. कम भंडारण स्थान: सामान्य सूखे चारे की अपेक्षा कम स्थान में अधिक मात्रा में चारा संरक्षित किया जा सकता है।

6. आग लगने का खतरा नहीं: सूखे भूसे या हे की तुलना में आग का जोखिम अत्यंत कम होता है।

7. पशुओं की बेहतर सेहत: साइलेज पाचन में आसान होता है तथा पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होता है।

8. डेयरी फार्म की आय में वृद्धि: नियमित पोषण से दूध उत्पादन बढ़ता है, जिससे पशुपालकों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

साइलेज निर्माण में सावधानियाँ

- बहुत अधिक गीला या बहुत सूखा चारा उपयोग न करें।
- साइलो में हवा नहीं रहनी चाहिए।
- प्लास्टिक शीट में छेद न होने दें।
- फफूंदयुक्त साइलेज पशुओं को न खिलाएँ।
- साइलो खोलने के बाद प्रतिदिन आवश्यक मात्रा ही निकालें।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में साइलेज केवल चारा संरक्षण की तकनीक नहीं, बल्कि आधुनिक पशुपालन की आवश्यकता बन चुकी है। यह किसानों को चारे की कमी, सूखे और बढ़ती उत्पादन लागत जैसी समस्याओं से बचाने का प्रभावी उपाय है। यदि प्रत्येक पशुपालक वर्षा ऋतु में उपलब्ध अतिरिक्त हरे चारे का वैज्ञानिक ढंग से साइलेज तैयार करे, तो वर्षभर पशुओं को गुणवत्तापूर्ण पोषण उपलब्ध कराया जा सकता है और दूध उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है।

संदेश

“सही चारा, सही संरक्षण – स्वस्थ पशु, अधिक दूध और समृद्ध किसान।”

“आज बनाएँ साइलेज, कल पाएँ बेहतर उत्पादन और अधिक मुनाफा।”

♣♣♣

हर्बल होली रंग: प्राकृतिक रंगों की परंपरा और महत्व

लेफ्ट डॉ. सिम्पल जैन

सह प्राध्यापक

आस्पी पोषण और सामुदायिक विज्ञानं महाविद्यालय, सरदारकृषिनगर दांतीवाड़ा कृषि यूनिवर्सिटी, सरदारकृषिनगर- गुजरात

भारत विविधताओं और उत्सवों का देश है, जहाँ प्रत्येक त्यौहार का अपना सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक महत्व है। होली उन्हीं प्रमुख त्योहारों में से एक है, जिसे "रंगों का त्योहार" कहा जाता है। यह न केवल बुराई पर अच्छाई की विजय का प्रतीक है, बल्कि प्रकृति में नवजीवन, वसंत ऋतु के आगमन और सामाजिक एकता का भी उत्सव है। पारंपरिक रूप से होली प्राकृतिक रंगों से खेली जाती थी, जो फूलों, पत्तियों, और औषधीय पौधों से तैयार किए जाते थे। किन्तु समय के साथ व्यावसायीकरण और त्वरित उत्पादन की प्रवृत्ति ने इन प्राकृतिक रंगों को पीछे छोड़ दिया और उनकी जगह सस्ते, आकर्षक लेकिन हानिकारक रासायनिक रंगों ने ले ली। इन रासायनिक रंगों के उपयोग से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, पर्यावरण प्रदूषण तथा कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव देखने को मिले हैं। ऐसे में हर्बल होली रंग एक सुरक्षित, पर्यावरण-अनुकूल और आर्थिक रूप से लाभकारी विकल्प के रूप में उभर रहे हैं।

रासायनिक रंगों का बढ़ता उपयोग और उसके दुष्प्रभाव

आधुनिक समय में होली के रंगों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्वों का उपयोग किया जाता है, जैसे—सीसा, पारा, क्रोमियम, कॉपर सल्फेट । ये तत्व त्वचा, आँखों और श्वसन तंत्र के लिए अत्यंत हानिकारक होते हैं। इन रंगो का निम्नलिखित दुष्प्रभाव होता हैं:-

- **स्वास्थ्य पर प्रभाव**
  - ✓ त्वचा पर एलर्जी, खुजली, जलन
  - ✓ आँखों में संक्रमण, लालिमा, दृष्टि हानि
  - ✓ सांस लेने में कठिनाई, अस्थमा
  - ✓ बालों का झड़ना और रूखापन
- **पर्यावरण पर प्रभाव**
  - ✓ जल स्रोतों का प्रदूषण
  - ✓ मिट्टी की उर्वरता में कमी
  - ✓ जलीय जीवों पर दुष्प्रभाव
  - ✓ जैव विविधता का नुकसान
- **कृषि पर प्रभाव-** रासायनिक रंग जब पानी के साथ खेतों में पहुँचते हैं, तो वे मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को नष्ट कर देते हैं, जिससे फसल उत्पादन प्रभावित होता है। साथ ही, ये रंग जल स्रोतों को भी दूषित करते हैं, जिससे सिंचाई की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

हर्बल होली रंग: एक सुरक्षित और टिकाऊ विकल्प

हर्बल होली रंग प्राकृतिक वनस्पतियों, पुष्पों, औषधीय पौधों तथा अन्य जैविक स्रोतों से निर्मित किए जाते हैं। पारंपरिक भारतीय ज्ञान एवं आयुर्वेदिक पद्धतियों पर आधारित ये रंग आधुनिक रासायनिक रंगों की तुलना में अधिक सुरक्षित एवं स्वास्थ्यवर्धक माने जाते हैं। इनका उपयोग मानव स्वास्थ्य के साथ-साथ पर्यावरणीय संतुलन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। हर्बल रंगों के निर्माण में स्थानीय संसाधनों का उपयोग होने

से ग्रामीण स्तर पर कुटीर उद्योगों एवं स्वरोजगार को बढ़ावा मिलता है। इसके अतिरिक्त, ये रंग सतत विकास, हरित उपभोग तथा पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार, हर्बल होली रंग पारंपरिक संस्कृति और आधुनिक पर्यावरणीय चेतना के मध्य एक संतुलित एवं टिकाऊ विकल्प के रूप में उभर रहे हैं।

हर्बल होली रंगों के प्रमुख लाभ

- ✓ मानव स्वास्थ्य के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित एवं त्वचा-अनुकूल
- ✓ प्राकृतिक एवं जैविक स्रोतों से निर्मित
- ✓ पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण नियंत्रण में सहायक
- ✓ स्थानीय संसाधनों के उपयोग से ग्रामीण रोजगार को प्रोत्साहन
- ✓ कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास में उपयोगी
- ✓ सतत विकास एवं हरित जीवनशैली को बढ़ावा देने वाले
- ✓ पारंपरिक भारतीय ज्ञान एवं आयुर्वेदिक परंपराओं के संरक्षण में सहायक

हर्बल रंगों के स्रोत और उनके गुण

क्र. सं.	रंग	स्रोत
1.	पीला	हल्दी, गेंदा
2.	लाल	चुकंदर, गुलाब
3.	हरा	नीम, पालक
4.	नारंगी	पलाश
5.	नीला	अपराजिता फूल
6.	जामुनी रंग	जामुन + चुकंदर
7.	भूरा रंग	चायपत्ती + कॉफी पाउडर

इन पौधों में फ्लेवोनोइड्स, कैरोटेनॉइड्स और एंथोसाइनिन जैसे प्राकृतिक पिगमेंट पाए जाते हैं, जो रंग प्रदान करते हैं और स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी होते हैं।

हर्बल होली रंग बनाने की सामान्य विधि

हर्बल होली रंग प्राकृतिक फूलों, पत्तियों, फलों, सब्जियों एवं औषधीय पौधों की सहायता से आसानी से तैयार किए जा सकते हैं। विभिन्न रंगों के निर्माण के लिए केवल प्राकृतिक सामग्री बदलती है, जबकि उनकी बनाने की प्रक्रिया लगभग समान रहती है। इस विधि द्वारा लाल, पीला, हरा, गुलाबी, नीला, नारंगी अथवा अन्य सभी प्रकार के हर्बल रंग तैयार किए जा सकते हैं।

आवश्यक सामग्री

- ✓ प्राकृतिक रंग देने वाली सामग्री: जैसे—बीट, हल्दी, पलाश के फूल, गुलाब, पालक, नीम, अपराजिता आदि
- ✓ अरारोट / कॉर्न फ्लोर
- ✓ थोड़ा पानी
- ✓ मिक्सर या सिल-बट्टा
- ✓ छन्नी या सूती कपड़ा
- ✓ थाली या ट्रे

बनाने की सामान्य प्रक्रिया

- ✓ सबसे पहले चयनित प्राकृतिक सामग्री को अच्छी तरह धो लें।
- ✓ इसके बाद सामग्री को छोटे टुकड़ों में काटकर मिक्सर में थोड़ा पानी डालकर पीस लें।
- ✓ तैयार मिश्रण को सूती कपड़े या छन्नी की सहायता से छान लें, जिससे रंगयुक्त रस अलग हो जाए।
- ✓ अब इस प्राकृतिक रस में अरारोट, अथवा कॉर्न फ्लोर मिलाकर अच्छी तरह मिश्रित करें।
- ✓ तैयार मिश्रण को थाली या ट्रे में पतली परत के रूप में फैलाकर छाया में सुखाएँ।
- ✓ पूरी तरह सूख जाने के बाद इसे हाथों से मसलकर या हल्का पीसकर महीन पाउडर बना लें।

ISSN: 3049-2211

इस प्रकार तैयार हर्बल रंग त्वचा के लिए सुरक्षित, पर्यावरण-अनुकूल तथा रासायनिक रंगों की तुलना में अधिक स्वास्थ्यवर्धक होते हैं। साथ ही, इन्हें घर पर कम लागत में सरलता से तैयार किया जा सकता है।

कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में भूमिका

हर्बल रंगों का उत्पादन किसानों और ग्रामीण समुदायों के लिए एक नया आर्थिक अवसर प्रदान करता है—

1. **फूलों की खेती को बढ़ावा:** गेंदा, गुलाब, पलाश जैसे फूलों की मांग बढ़ने से किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है।
2. **औषधीय पौधों का उत्पादन:** नीम, तुलसी, अपराजिता जैसे पौधों की खेती से औषधीय और रंग उत्पादन दोनों में लाभ।
3. **कृषि अपशिष्ट का उपयोग**: मंदिरों और आयोजनों से निकलने वाले फूलों के कचरे का उपयोग हर्बल गुलाल बनाने में किया जा सकता है।
4. **महिला सशक्तिकरण:** ग्रामीण महिलाएँ स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से हर्बल रंग बनाकर स्वरोजगार प्राप्त कर सकती हैं।

हर्बल रंगों का बाजार और संभावनाएँ

वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण, स्वास्थ्य सुरक्षा तथा प्राकृतिक उत्पादों के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण हर्बल होली रंगों की मांग निरंतर बढ़ रही है। उपभोक्ताओं में रासायनिक रंगों के दुष्प्रभावों के प्रति जागरूकता बढ़ने से लोग सुरक्षित एवं प्राकृतिक विकल्पों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। परिणामस्वरूप, हर्बल रंगों का बाजार शहरी क्षेत्रों के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी तेजी से विकसित हो रहा है। विशेष रूप से जैविक (ऑर्गेनिक) एवं पर्यावरण-अनुकूल उत्पादों की बढ़ती लोकप्रियता ने हर्बल रंग उद्योग को नए अवसर प्रदान किए हैं। त्योहारी मौसम में हर्बल होली रंगों की मांग अत्यधिक बढ़ जाती है, जिससे इनके विपणन एवं उद्यमिता की संभावनाएँ और अधिक विस्तृत हो जाती हैं। वर्तमान में अनेक स्टार्टअप, महिला समूह तथा लघु उद्योग प्राकृतिक होली रंगों के उत्पादन एवं ऑनलाइन विपणन से जुड़े हुए हैं। ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म, सोशल मीडिया तथा स्थानीय मेलों के माध्यम से इन उत्पादों की बिक्री में वृद्धि देखी जा रही है। इसके अतिरिक्त, हर्बल रंगों का उत्पादन "वोकल फॉर लोकल", "मेक इन इंडिया" तथा सतत विकास जैसी अवधारणाओं के अनुरूप भी है। यदि उचित प्रशिक्षण, पैकेजिंग, गुणवत्ता नियंत्रण तथा विपणन सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ, तो हर्बल रंग उद्योग ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इस प्रकार, हर्बल होली रंगों का बाजार भविष्य में एक सुरक्षित, लाभकारी एवं टिकाऊ उद्यम के रूप में व्यापक संभावनाएँ रखता है।

निष्कर्ष

हर्बल होली रंग स्वास्थ्य, पर्यावरण और कृषि के दृष्टिकोण से एक आदर्श विकल्प हैं। ये न केवल सुरक्षित और टिकाऊ हैं, बल्कि किसानों और ग्रामीण समुदायों के लिए आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। आज आवश्यकता है कि हम पारंपरिक ज्ञान को अपनाते हुए रासायनिक रंगों से दूरी बनाएं और प्राकृतिक रंगों को बढ़ावा दें। यदि हम सामूहिक रूप से इस दिशा में प्रयास करें, तो हम न केवल अपने स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए एक सुरक्षित और हरित भविष्य भी सुनिश्चित कर सकते हैं।

♣♣♣

जीरो एनर्जी कूल चैम्बर:
छोटे किसानों के लिए सस्ता और टिकाऊ भंडारण विकल्प

डॉ. प्रवीण कुमार हटवाल, डॉ. विष्णु शंकर मीना, डॉ. शशि कुमार बैरवा,
डॉ. श्वेता सिंह, डॉ. प्रवीण पिलानिया, डॉ. पार्वती दीवान
एस. के. एन. कृषि विश्वविधालय, जोबनेर, राजस्थान

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ बड़ी मात्रा में फल, सब्जियाँ तथा अन्य बागवानी फसलें उत्पादित की जाती हैं। ये उत्पाद अत्यधिक नाशवान (Perishable) होते हैं और कटाई के बाद भी इनमें श्वसन, वाष्पोत्सर्जन तथा अन्य जैव-रासायनिक क्रियाएँ लगातार चलती रहती हैं। इन प्रक्रियाओं के कारण उत्पादों की गुणवत्ता धीरे-धीरे घटने लगती है और वे शीघ्र खराब हो जाते हैं।

देश के अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक शीत भंडारण (Cold Storage) तथा कोल्ड-चेन सुविधाओं का अभाव है। फलस्वरूप किसान अपनी उपज को लंबे समय तक सुरक्षित नहीं रख पाते। उच्च तापमान और कम आर्द्रता की परिस्थितियों में फल एवं सब्जियों से नमी तेजी से निकलती है, जिससे उनका वजन कम हो जाता है, ताजगी समाप्त हो जाती है तथा बाजार मूल्य घट जाता है। कई बार फफूंद, बैक्टीरिया और कीटों के प्रकोप से भी उपज खराब हो जाती है।

कटाई के बाद होने वाले नुकसान (Post-Harvest Losses) भारत में एक गंभीर समस्या है। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार फल एवं सब्जियों में कटाई के बाद 20 से 30 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। इससे किसानों को आर्थिक हानि होती है और उपभोक्ताओं तक गुणवत्तापूर्ण उत्पाद पर्याप्त मात्रा में नहीं पहुँच पाते।

उचित भंडारण सुविधाओं की कमी के कारण किसानों के सामने अपनी उपज को तुरंत बेचने की मजबूरी होती है। कटाई के मौसम में बाजार में एक साथ बड़ी मात्रा में उपज आने से कीमतें गिर जाती हैं। किसान यदि उपज को कुछ समय तक सुरक्षित रख सकें, तो बेहतर बाजार मूल्य प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन भंडारण सुविधाओं के अभाव में उन्हें कम कीमत पर उपज बेचनी पड़ती है। इससे उनकी आय प्रभावित होती है और उत्पादन लागत की तुलना में लाभ कम हो जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली आधारित कोल्ड स्टोरेज की उपलब्धता सीमित होने के कारण वैज्ञानिकों ने एक ऐसी तकनीक विकसित की, जो बिना बिजली के फल एवं सब्जियों को अधिक समय तक सुरक्षित रख सके। इसी उद्देश्य से भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI), नई दिल्ली द्वारा पूसा जीरो एनर्जी कूल चैम्बर (Pusa Zero Energy Cool Chamber - ZECC) का विकास किया गया।

जीरो एनर्जी कूल चैम्बर (ZECC) एक कम लागत वाली, पर्यावरण-अनुकूल तथा ऊर्जा रहित भंडारण संरचना है, जिसका उपयोग मुख्य रूप से फल, सब्जियों एवं अन्य बागवानी उत्पादों को कटाई के बाद सुरक्षित रखने के लिए किया जाता है। इस तकनीक का विकास किसानों को आधुनिक शीत भंडारण सुविधाओं के अभाव में एक सरल

एवं किफायती विकल्प प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया था। यह संरचना बिना किसी बिजली, डीजल या अन्य बाहरी ऊर्जा स्रोत के कार्य करती है और **वाष्पीकरणीय शीतलन (Evaporative Cooling)** के सिद्धांत पर आधारित होती है।

भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देश में फल एवं सब्जियाँ कटाई के बाद तेजी से खराब होने लगती हैं। उच्च तापमान और कम आर्द्रता के कारण इन उत्पादों से नमी निकलती रहती है, जिससे उनका वजन, ताजगी, रंग, स्वाद और पोषण गुणवत्ता प्रभावित होती है। ऐसी परिस्थितियों में जीरो एनर्जी कूल चैम्बर किसानों के लिए एक प्रभावी समाधान प्रदान करता है। यह चैम्बर अपने अंदर अपेक्षाकृत कम तापमान तथा अधिक आर्द्रता बनाए रखता है, जिससे उत्पादों की ताजगी लंबे समय तक बनी रहती है।

जीरो एनर्जी कूल चैम्बर का अर्थ

"जीरो एनर्जी" का अर्थ है कि इसके संचालन के लिए किसी प्रकार की बिजली, डीजल, गैस या अन्य बाहरी ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती। यह केवल पानी के वाष्पीकरण के सिद्धांत पर कार्य करता है। इस चैम्बर में तापमान कम तथा आर्द्रता अधिक बनी रहती है, जिससे फल एवं सब्जियों की ताजगी लंबे समय तक बनी रहती है।

विकास का इतिहास

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (पूसा संस्थान), नई दिल्ली के वैज्ञानिकों ने छोटे और सीमांत किसानों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इस तकनीक का विकास किया।

इसका मुख्य उद्देश्य था:

- ✓ कटाई के बाद होने वाली हानि को कम करना।
- ✓ किसानों को बेहतर बाजार मूल्य प्राप्त करने में सहायता देना।
- ✓ ग्रामीण क्षेत्रों में कम लागत वाली भंडारण सुविधा उपलब्ध कराना।
- ✓ बिजली पर निर्भरता कम करना।

कार्य करने का सिद्धांत

पूसा जीरो एनर्जी कूल चैम्बर वाष्पीकरणीय शीतलन के सिद्धांत पर कार्य करता है। जब रेत में मौजूद पानी वाष्पित होता है, तो वह आसपास की ऊष्मा को अवशोषित करता है। इससे चैम्बर के अंदर का तापमान कम हो जाता है तथा आर्द्रता बढ़ जाती है।

परिणाम

- ✓ बाहरी तापमान की तुलना में 10–15°C तक कमी
- ✓ सापेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity) 90–95% तक
- ✓ उपज का वजन कम नहीं होता
- ✓ ताजगी और गुणवत्ता लंबे समय तक बनी रहती है

संरचना (Structure)

जीरो एनर्जी कूल चैम्बर सामान्यतः निम्न भागों से मिलकर बनता है:

1. आधार (Foundation)

- ✓ समतल एवं छायादार स्थान पर बनाया जाता है।
- ✓ ईंट एवं सीमेंट का आधार तैयार किया जाता है।

2. दोहरी ईंट की दीवार

- ✓ दो दीवारों के बीच लगभग 7–8 सेमी का अंतर रखा जाता है।
- ✓ इस अंतर को साफ रेत से भर दिया जाता है।

3. रेत की परत

- ✓ रेत पानी को सोखकर रखती है।
- ✓ नियमित रूप से गीला रखा जाता है।

4. ढक्कन

- ✓ बाँस, लकड़ी या लोहे का फ्रेम बनाया जाता है।
- ✓ ऊपर गीला टाट, जूट या सूती कपड़ा लगाया जाता है।

निर्माण की विधि

चरण 1: स्थान का चयन

- ✓ छायादार स्थान चुनें।
- ✓ सीधी धूप से बचाव होना चाहिए।
- ✓ पानी की उपलब्धता होनी चाहिए।

चरण 2: आधार तैयार करना

- ✓ लगभग 165 × 115 सेमी का प्लेटफॉर्म बनाएं।
- ✓ ईंट और सीमेंट से मजबूत आधार तैयार करें।

चरण 3: दीवार बनाना

- ✓ दोहरी ईंट की दीवार बनाएं।
- ✓ दोनों दीवारों के बीच 7–8 सेमी का अंतर रखें।

चरण 4: रेत भरना

- ✓ दोनों दीवारों के बीच साफ नदी की रेत भरें।

चरण 5: पानी देना

- ✓ रेत को पूरी तरह गीला करें।

चरण 6: ढक्कन लगाना

- ✓ ऊपर बाँस या लकड़ी का फ्रेम रखें।
- ✓ फ्रेम को गीले टाट से ढक दें।

संचालन एवं रखरखाव

- ✓ रेत को प्रतिदिन पानी से गीला रखें।
- ✓ टाट या कपड़े को सूखने न दें।
- ✓ चैम्बर की सफाई नियमित करें।
- ✓ खराब फल या सब्जियाँ तुरंत निकाल दें।
- ✓ उचित वायु संचार बनाए रखें।

भंडारण क्षमता

एक सामान्य जीरो एनर्जी कूल चैम्बर में लगभग:

- ✓ 100–200 किलोग्राम फल एवं सब्जियाँ
- ✓ छोटे किसानों की दैनिक उपज
- ✓ नर्सरी पौधे और फूल
- ✓ सुरक्षित रखे जा सकते हैं।

भंडारित की जाने वाली फसलें

सब्जियाँ- टमाटर, भिंडी, बैंगन, मिर्च, फूलगोभी, पत्तागोभी, खीरा, गाजर।

फल- आम, अमरूद, संतरा, नींबू, पपीता, अनार, बेल।

अन्य उत्पाद- फूल, पौधशाला के पौधे, मशरूम।

भंडारण अवधि में वृद्धि

फसल	सामान्य स्थिति	ZECC में
टमाटर	2–3 दिन	8–12 दिन
भिंडी	1–2 दिन	5–7 दिन
बैंगन	3–4 दिन	8–10 दिन
मिर्च	2–3 दिन	7–10 दिन
अमरूद	3–4 दिन	10–15 दिन

लाभ

- ✓ आर्थिक लाभ।
- ✓ कम लागत में निर्माण।
- ✓ बिजली का खर्च नहीं।
- ✓ बाजार में उचित समय पर बिक्री संभव।
- ✓ किसानों की आय में वृद्धि।
- ✓ तकनीकी लाभ।
- ✓ तापमान कम रहता है।
- ✓ आर्द्रता अधिक रहती है।
- ✓ उपज की गुणवत्ता बनी रहती है।
- ✓ पर्यावरणीय लाभ।
- ✓ ऊर्जा की बचत।
- ✓ प्रदूषण रहित तकनीक।
- ✓ कार्बन उत्सर्जन नहीं।
- ✓ सामाजिक लाभ।
- ✓ छोटे किसानों के लिए उपयोगी।
- ✓ ग्रामीण क्षेत्रों में आसानी से अपनाई जा सकती है।
- ✓ खाद्य अपव्यय में कमी।

सीमाएँ

- ✓ अत्यधिक आर्द्र क्षेत्रों में प्रभाव कम हो सकता है।
- ✓ केवल अल्पकालीन भंडारण के लिए उपयुक्त।
- ✓ मांस, दूध एवं जमे हुए उत्पादों के लिए उपयुक्त नहीं।
- ✓ नियमित पानी की आवश्यकता होती है।
- ✓ बड़े व्यावसायिक भंडारण के लिए पर्याप्त नहीं।

कृषि में महत्व

भारत में कटाई के बाद फल एवं सब्जियों की 20–30 प्रतिशत तक हानि होती है। पूसा जीरो एनर्जी कूल चैम्बर इस हानि को कम करने का एक प्रभावी उपाय है। यह तकनीक किसानों को अपनी उपज कुछ दिनों तक सुरक्षित रखने में मदद करती है, जिससे वे उचित बाजार मूल्य मिलने पर ही बिक्री कर सकते हैं।

निष्कर्ष

जीरो एनर्जी कूल चैम्बर भारतीय कृषि के लिए एक अत्यंत उपयोगी, सस्ती एवं वैज्ञानिक तकनीक है। यह बिना बिजली के फल एवं सब्जियों के भंडारण की सुविधा प्रदान करता है तथा कटाई के बाद होने वाली हानि को कम करता है। छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए यह तकनीक आय बढ़ाने, खाद्य अपव्यय कम करने और कृषि को अधिक लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में इसका व्यापक प्रचार-प्रसार और उपयोग कृषि विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

♣♣♣

सब्जी उत्पादन में मल्चिंग का महत्व

भरत कुमार- सहायक आचार्य, उद्यान विज्ञान, **मनीष कुमार दुरिया**- पशुधन उत्पादन और प्रबंधन,
नाथजी कृषि महाविद्यालय नाथद्वारा, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

भारत में बढ़ती जनसंख्या के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण एवं अधिक उत्पादन वाली सब्जियों की मांग लगातार बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में किसानों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वे आधुनिक कृषि तकनीकों को अपनाकर उत्पादन एवं लाभ दोनों में वृद्धि करें। मल्चिंग (Mulching) ऐसी ही एक महत्वपूर्ण तकनीक है, जो सब्जी उत्पादन में जल संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण, मृदा स्वास्थ्य सुधार तथा उत्पादन बढ़ाने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई है।

मल्चिंग का अर्थ है फसल के आसपास की भूमि की सतह को किसी जैविक या अजैविक पदार्थ से ढकना। यह आवरण मिट्टी को बाहरी प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाता है तथा पौधों के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है।

मल्चिंग के प्रकार

जैविक (Organic) मल्च

इसमें प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग किया जाता है, जैसे: सूखी घास, पुआल, फसल अवशेष, पत्तियां, लकड़ी का बुरादा, कम्पोस्ट।

अजैविक (Inorganic) मल्च

इसमें कृत्रिम पदार्थों का उपयोग किया जाता है, जैसे: काली पॉलीथीन शीट, सिल्वर-ब्लैक प्लास्टिक मल्च, बायोडिग्रेडेबल फिल्म, पत्थर या कंकड़।

सब्जी उत्पादन में मल्चिंग का महत्व

- **जल संरक्षण में सहायक:** मल्चिंग मिट्टी की सतह से पानी के वाष्पीकरण को कम करती है, जिससे नमी लंबे समय तक बनी रहती है। इससे सिंचाई की आवश्यकता कम पड़ती है और जल की बचत होती है। विशेष रूप से टमाटर, मिर्च, खीरा, तरबूज और खरबूज जैसी फसलों में इसका अत्यधिक लाभ देखा गया है।
- **खरपतवार नियंत्रण:** मल्च की परत सूर्य के प्रकाश को मिट्टी तक पहुंचने से रोकती है, जिससे खरपतवारों का अंकुरण कम हो जाता है। परिणामस्वरूप खरपतवार नियंत्रण पर होने वाला श्रम और खर्च कम हो जाता है।
- **मृदा तापमान का नियंत्रण:** गर्मियों में मल्च मिट्टी को अत्यधिक गर्म होने से बचाती है तथा सर्दियों में तापमान बनाए रखने में सहायता करती है। इससे पौधों की जड़ों का विकास बेहतर होता है और पौधे स्वस्थ रहते हैं।
- **मृदा अपरदन की रोकथाम:** तेज वर्षा या हवा के कारण मिट्टी का कटाव होता है। मल्चिंग मिट्टी को ढककर रखती है, जिससे मृदा अपरदन कम होता है तथा भूमि की उर्वरता बनी रहती है।
- **मृदा की संरचना में सुधार:** जैविक मल्च धीरे-धीरे विघटित होकर मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाती है। इससे मिट्टी की जल धारण क्षमता, वायु संचार तथा सूक्ष्मजीव गतिविधियां बढ़ती हैं।
- **फलों और सब्जियों की गुणवत्ता में सुधार:** मल्चिंग के कारण फल और सब्जियां सीधे मिट्टी के संपर्क में नहीं आतीं, जिससे सड़न और रोगों की संभावना कम हो जाती है। उत्पादन अधिक आकर्षक और बाजार योग्य बनता है।

- **उत्पादन में वृद्धि:** कई अनुसंधानों में पाया गया है कि मल्चिंग तकनीक अपनाने से सब्जियों की उपज में 20 से 50 प्रतिशत तक वृद्धि संभव है। साथ ही फसल जल्दी तैयार होती है और किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।
- **उर्वरकों की उपयोग दक्षता बढ़ाना:** मल्चिंग के कारण पोषक तत्वों का बहाव और वाष्पीकरण कम होता है। इससे पौधों को पोषक तत्व अधिक उपलब्ध होते हैं तथा उर्वरकों का बेहतर उपयोग होता है।

सब्जी फसलों में मल्चिंग का उपयोग

टमाटर: काली पॉलीथीन मल्च का उपयोग करने से फल उत्पादन बढ़ता है तथा खरपतवार नियंत्रण में सहायता मिलती है।

मिर्च: मल्चिंग से मिट्टी में नमी बनी रहती है, जिससे पौधों की वृद्धि और फलन में सुधार होता है।

खीरा एवं ककड़ी वर्गीय फसलें: फल मिट्टी के सीधे संपर्क से बचते हैं और गुणवत्ता बेहतर रहती है।

बैंगन: मल्चिंग से पौधों की वृद्धि तेज होती है तथा सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाती है।

तरबूज एवं खरबूज: प्लास्टिक मल्च से उत्पादन और फलों की गुणवत्ता दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

मल्चिंग के आर्थिक लाभ

- ✓ सिंचाई लागत में कमी
- ✓ खरपतवार नियंत्रण पर कम खर्च
- ✓ अधिक उत्पादन और बेहतर गुणवत्ता
- ✓ बाजार में उच्च मूल्य प्राप्ति
- ✓ श्रम लागत में कमी

इन सभी कारणों से किसानों की शुद्ध आय में वृद्धि होती है।

मल्चिंग करते समय सावधानियां

- ✓ अच्छी गुणवत्ता वाली मल्च सामग्री का चयन करें।
- ✓ प्लास्टिक मल्च बिछाते समय उचित दूरी पर पौधों के लिए छेद बनाएं।
- ✓ ड्रिप सिंचाई के साथ मल्चिंग का उपयोग अधिक लाभदायक होता है।
- ✓ जैविक मल्च में रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों का उपयोग न करें।
- ✓ उपयोग के बाद प्लास्टिक मल्च का उचित निपटान करें।

♣♣♣

ऊसर से उर्वर:
भारत में बंजर भूमि के विकास में समस्याएँ और उपाय

डा0 नवीन कुमार शुक्ला एवं डा0 मान्धाता सिंह
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया (उ.प्र.)

भारत में ऊसर भूमि को उर्वर बनाना खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण सुधार और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। देश की बढ़ती जनसंख्या और शहरीकरण के चलते कृषि योग्य भूमि निरंतर घट रही है, जिससे बंजर भूमि का विकास वर्तमान में एक आवश्यक कदम बन गया है। बंजर भूमि ऐसी भूमि होती है जिसमें लवणों की अधिकता होती है, विशेष रूप से सेडियम लवणों की। आमतौर पर, कई वर्षों से खाली पड़ी भूमि को बंजर माना जाता है। कुछ ऐसी कृषि भूमि, जो गुणवत्ता में कम है या लाभकारी खेती के लिए उपयुक्त नहीं है, उसे भी अक्सर बंजर के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। रिपार्ट के मुताबिक, भारत की जमीन लगातार बंजर होती जा रही है। यह भारतीय कृषि के लिए मूलभूत खतरा है। रिपोर्ट के मुताबिक, भारत की 30 प्रतिशत जमीन खराब या बंजर होने की कगार पर है। भारत का समग्र भौगोलिक क्षेत्रफल 328.7 मिलियन हेक्टेयर (लगभग 3.29 मिलियन वर्ग किलोमीटर) है। वेस्टलैंड्स एटलस और मरुस्थलीकरण एटलस के अनुसार, इसमें से लगभग 97.85 मिलियन हेक्टेयर (यानी कुल क्षेत्र का लगभग 29.77 प्रतिशत) भूमि बंजर या भूमि क्षरण के प्रभाव में आ चुकी है। भारत में क्षेत्रफल के हिसाब से सबसे ज्यादा बंजर (ऊसर) भूमि राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में स्थित है। हालांकि, अगर प्रतिशत के दृष्टिकोण से देखा जाए तो झारखंड (राज्य का 69 प्रतिशत हिस्सा) में बंजरता और मरुस्थलीकरण की सबसे गंभीर स्थिति है। उत्तर प्रदेश में ऊसर और बंजर भूमि का प्रसार है, लेकिन सरकार और विश्व बैंक के प्रयासों से इसे बेहतर बनाया जा रहा है। इस भूमि को कृषि या झींगा पालन जैसे विकल्पों से उपयोगी बना सकते हैं। बंजर जमीन, जो सूख जाती है और क्षेत्र से नमी खत्म हो जाती है। यह क्षेत्र अपनी वाॅटर बाॅडिज को खो देते है। साथ ही वनस्पति और वनस्पति भी नष्ट हो जाते है। बंजर जमीन कृषि कार्यो के लिए उपयोगी नहीं रहती। जमीन आमतौर पर पानी की कमी के कारण बंजर होती है। इस कारण ही देश की 16.96 प्रतिशत जमीन बंजर है।

बंजर भूमि के विकास में प्रमुख समस्याएँ

1. मृदा की रासायनिक और भौतिक समस्याएँ-

इन खेतों में क्षारीयता (पीएच मान 8.5 से अधिक) और लवणता अत्यधिक होती है। मिट्टी की नीचे की परत कठोर बन जाती है, जिससे पानी धरती के अंदर नहीं जा पाता और जलभराव की समस्या उत्पन्न होती है। मिट्टी के सूखने पर यह सीमेंट जैसी कठोर हो जाती है, जिससे जड़ों का विकास रुक जाता है।

2. जलभराव और जल का अभाव-

भारत में ऊसर (बंजर) भूमि को उपजाऊ और कृषिक योग्य बनाने में जलभराव और जल की कमी दोनों मुख्य बाधाएँ हैं। जलभराव मिट्टी में क्षारीयता (खारापन) बढ़ाता है, जबकि जल की कमी भूमि को कठोर और शुष्क बना देती है। कुछ क्षेत्रों में जल निकासी की कमी से

ISSN: 3049-2211

भूमि दलदली और बंजर बन जाती है, जबकि अन्य क्षेत्रों में भूजल स्तर अत्यंत नीचा होने के कारण गंभीर सूखा होता है।

3. मिट्टी का कटाव-

भारत में बंजर और ऊसर भूमि को खेतों में बदलना बहुत जरूरी है। इसके विकास में मृदा में लवणता, जल भराव, और मिट्टी का कटाव प्रमुख अवरोध हैं। वनों की कटाई, अधिक चराई और ढलान वाले क्षेत्रों में अनुचित खेती के कारण उपजाऊ ऊपरी मिट्टी पानी और हवा द्वारा बह जाती है। इन समस्याओं के समाधान के लिए जिप्सम का इस्तेमाल, मेड़बंदी, जल निकासी उपाय, और जैविक खेती जैसे वैज्ञानिक तरीकों का सहारा लिया जाता है।

4. आर्थिक और तकनीकी बाधाएँ-

भारत में लगभग 30% भौगोलिक क्षेत्र भूमि क्षरण का शिकार है। बंजर या ऊसर भूमि को उपजाऊ करने में मिट्टी का कटाव (जल और वायु के कारण), लवणीयता, और आर्थिक-तकनीकी बाधाएँ मुख्य समस्याएँ हैं। ऊसर भूमि के सुधार (जिप्सम/पाइराइट का उपयोग और समतलीकरण) में काफी लागत लगती है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए बंजर भूमि को सुधारने के लिए पर्याप्त धन और बैंकिंग ऋण प्राप्त करना मुश्किल होता है। किसानों को मिट्टी परीक्षण, लवणता कम करने की विधि और क्षेत्र के अनुसार सही फसल का चयन करने की पूरी जानकारी नहीं होती।

बंजर भूमि की पहचान कैसे करें?

बंजर भूमि (अनुत्पादक मिट्टी) की पहचान उसके सतह पर सफेद लवण के जमाव, जलभराव, और खराब फसल विकास के माध्यम से होती है। इस प्रकार की मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की पर्याप्त कमी होती है और इसका चभ् मान 8.5 से अधिक या बहुत कम हो जाता है।

नजी बंजर भूमि व्यक्तिगत है, लेकिन सरकारी या सार्वजनिक संस्थानों के अधीन जो भी बंजर भूमि है, उसका स्वामित्व स्पष्ट नहीं है। इनमें से कुछ भूमि पर लोगों ने नाजायज अधिकार जमा रखे हैं। इसलिए इन भूमि की स्थानीय जांच होनी चाहिए। जिन पर विवाद है, उन्हें विकास के लिए तब तक नहीं लेना चाहिए जब तक कि उनका विधिक रूप से निपटारा न हो जाए। गांव में जितनी भी बंजर भूमि खाली है, उसके स्वामित्व के रिकॉर्ड गांव के वित्त रिकॉर्ड ऑफिस से प्राप्त किए जा सकते हैं ताकि उनके स्वामित्व की पुष्टि हो सके। भूमि खाता विवरण के आधार पर बंजर भूमि को विकास के लिए निर्धारित किया जा सकता है।

बंजर भूमि निर्माण के कारण क्या हैं?

बंजर भूमि के निर्माण के मुख्य कारण प्राकृतिक और मानवजनित दोनों हैं। अत्यधिक कटाई और अनियमित कृषि से मिट्टी का कटाव होता है, जबकि खराब जल प्रबंधन से भूमि खारी हो जाती है। कम वर्षा, उच्च तापमान और जलभराव जैसे प्राकृतिक तत्व भी इसे उपजाऊ नहीं रहने देते। जलभराव या जल निकासी की सही व्यवस्था का अभाव, वर्षा की कमी और तापमान का बढ़ना, भूजल स्तर का ऊँचा होना, गहरे क्षेत्रों में जल रिसाव, वृक्षों की अत्यधिक कटाई, भूमि को खाली छोड़ देना, भूमि में अत्यधिक रसायनों का उपयोग करना तथा जैविक खाद, कम्पोस्ट, गोबर की खाद, एवं हरी खाद का प्रयोग न करना और लवणीय जल से सिंचाई करना ऐसे कई कारण हैं जिनसे भूमि बंजर हो जाती है। इसके अतिरिक्त, मिट्टी में सल्फेट और क्लोराइड के घुलनशील लवणों की अधिकता से मिट्टी की उर्वरता समाप्त हो जाती है। कृषि में पानी का अत्यधिक उपयोग और जल जमाव के कारण मिट्टी उपजाऊ होने के बजाय लवणीय बन जाती है।

बंजर भूमि समस्या का तकनीकी सुधार

मृदा के भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों को संतुलित रखना आवश्यक है। क्योंकि मृदा की उर्वरा शक्ति के क्षीण होने का नुकसान किसी न किसी रूप में समूचे राष्ट्र को चुकाना पड़ता है। यदि फसलों को वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों नाइट्रोजन, फास्फोरस, मैग्नीशियम, कैल्शियम, गंधक, पोटाश सहित अन्य तत्वों की उपलब्ध मात्रा का बचाकर उनका समुचित उपयोग पौधे को ताकतवार बनाने में किया जाए तो एक तरफ हमारी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा और दूसरी तरफ मृदा संरक्षण की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण पहल होगी।

बंजर व ऊसर भूमि के सुधार के उपाय

ऊसर से उर्वर की ओर बढ़ने के लिए वैज्ञानिक तकनीकों का क्रमबद्ध उपयोग आवश्यक है-

1. खेत का समतलीकरण और मेड़बंदी-

खेत को समतल करना और ऊँची मेड़ बनाना ताकि बारिश का पानी सही ढंग से उपयोग हो सके और अतिरिक्त पानी बाहर से न आए। खेत का समतलीकरण और मेड़बंदी बंजर और ऊसर भूमि को उपजाऊ

बनाने के लिए सबसे प्रमुख और आवश्यक उपाय हैं। ये दोनों प्रक्रियाएँ मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाते हैं, बारिश के पानी को खेत में समान रूप से रोकते हैं, और मृदा अपरदन (मिट्टी के कटाव) और लवणों के बहाव को रोकने में मदद करते हैं।

2. रासायनिक सुधारकों का प्रयोग-

क्षारीय मिट्टी के उपचार के लिए जिप्सम का उपयोग सर्वोत्तम है। मिट्टी की जांच के आधार पर जिप्सम डालकर उसे खेत में मिलाया जाता है।उत्तर प्रदेश (विशेष रूप से कर्मार तालुका मझोस) जैसे क्षेत्रों में ऊसर (लवणीय एवं क्षारीय) भूमि को उपजाऊ बनाना एक महत्वपूर्ण कदम है। रासायनिक सुधारकों (जैसे - जिप्सम) का प्रयोग कर क्षारीय मिट्टी का सुधार किया जाता है और सोडियम जैसे हानिकारक तत्वों को धोकर बाहर निकाला जाता है।

3. हरी खाद का उपयोग-

खेत में ढेंचा या सनई की फसल उगाकर उसे फूल आने से पहले मिट्टी में दबा दिया जाता है, जिससे जीवांश (कार्बन) बढ़ता है और भूमि की उर्वरा शक्ति वापस आती है।ऊसर और बंजर जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए हरी खाद एक प्राकृतिक और प्रभावी समाधान है। यह मिट्टी के उच्च पीएच स्तर को घटाती है, आवश्यक पोषक तत्वों (विशेषकर नाइट्रोजन और जिंक) की पूर्ति करती है, और जल-धारण क्षमता को बढ़ाकर भूमि को कृषि के लिए उपयुक्त बनाती है।

4. जैविक खाद और सूक्ष्म पोषक तत्व-

भारत में ऊसर (क्षारीय/लवणीय) और बंजर भूमि को उर्वर बनाने के लिए जैविक खाद और सूक्ष्म पोषक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट (केंचुआ खाद) और जिंक सल्फेट का संतुलित उपयोग करके मिट्टी के स्वास्थ्य को बेहतर किया जा सकता है। ये मिट्टी का पी.एच. घटाते हैं, लवणों को निकालते हैं और आवश्यक पोषण प्रदान कर भूमि को फिर से कृषि योग्य बनाते हैं।

5. उचित फसल चक्र-

धान-गेहूँ का फसल चक्र ऊसर सुधारने के लिए सबसे प्रभावी माना जाता है। इसके अलावा, लवणीय भूमि पर सहनशील फसलों (जैसे जौ, सरसों, और कुछ औषधीय पौधे) की खेती की जा सकती है। बंजर और ऊसर (लवणीय/क्षारीय) भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए मिट्टी के अनुसार सही जिप्सम का उपयोग, पक्के जल निकास की व्यवस्था और दलहन-आधारित फसल चक्र (जैसे- धान-बरसीम, ढैंचा-गेहूं) सबसे प्रभावशाली उपाय हैं। यह प्रक्रिया मिट्टी से हानिकारक लवणों को निकालती है और जैविक कार्बन व नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाकर ऊसर को उर्वर बनाती है।

6. मृदा परीक्षण की भूमिका-

भारत में कम होती कृषि योग्य भूमि के बीच ऊसर (लवणीय और क्षारीय) तथा बंजर भूमि को उपजाऊ बनाना खाद्य सुरक्षा और किसानों की आय बढ़ाने के लिए बहुत आवश्यक है। इसमें मृदा परीक्षण सबसे पहला और महत्वपूर्ण कदम है, जिसके आधार पर मिट्टी के सुधार और प्रबंधन की उचित योजना बनाई जाती है। मृदा परीक्षण से मिट्टी में उपस्थित प्रमुख पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम) और सूक्ष्म पोषक तत्वों की जानकारी मिलती है। ऊसर भूमि में क्षारीयता (पीएच मान 8.5 से अधिक) और लवणता की सटीक जानकारी प्राप्त होती है। भारत सरकार द्वारा प्रारंभ की गई इस योजना के अंतर्गत किसानों को हर 3 साल में एक बार मृदा परीक्षण रिपोर्ट प्रदान की जाती है। इससे किसान अपनी मिट्टी की सेहत (जैसे- कार्बनिक पदार्थ की स्थिति) के अनुसार उचित उर्वरक का उपयोग कर भूमि को बंजर होने से रोक सकते हैं। बंजर भूमि न बनने के लिए सरकार द्वारा भारत सरकार द्वारा भारत सरकार की ओर से इन दिनों मिट्टी जांच पर विशेष जोर दिया जा रहा है। जिला स्तर पर स्थापित प्रयोगशालाओं में गांवों की मिट्टी पहुँचाने के लिए किसान मित्रों का भी चयन किया गया है। ये किसान मित्र अपने-अपने गांव के किसानों की मिट्टी को लेकर प्रयोगशाला तक पहुँचा रहे है और प्रयोगशाला की रिपोर्ट के आधार पर किसानों को रासायनिक खाद एवं अन्य पोषक तत्वों का प्रयोग करने की सलाह दी जा रही है।

7. जल प्रबंधन द्वारा बंजर भूमि का विकास-

भारत में बंजर और ऊसर भूमि को कृषि योग्य और उपजाऊ बनाने में जल प्रबंधन का महत्व अत्यधिक है। वर्षा जल के उपयोग को अधिकतम बनाना, सिंचाई का सही प्रबंधन, और जल-निकासी प्रणाली बंजर भूमि को उर्वर बनाने में महत्वपूर्ण हैं। खेतों के चारों ओर मजबूत मेड़ों का निर्माण वर्षा के पानी को खेत में रोकता है, जिससे मिट्टी की नमी में वृद्धि होती है और भूमि का कटाव रुकता है। खेत के निचले हिस्से में एक छोटा तालाब खोदकर वर्षा का पानी संग्रहित किया जाता है, जिसका उपयोग सूखे के समय सिंचाई के लिए किया जा सकता है। विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में, यह जल संरक्षण और चारागाह विकास के लिए एक प्रभावी उपाय है।

8. जल-निकासी और लवण प्रबंधन

ऊसर (क्षारीय/खारी) मिट्टी में लवणों की उच्च मात्रा होती है। जल प्रबंधन के तहत खेत में 10-15 सेमी पानी भरकर कुछ हफ्तों के लिए छोड़ दिया जाता है, जिससे हानिकारक लवण घुलकर नीचे चले जाते हैं। पानी का ठहराव भी बंजर भूमि का निर्माण करता है। इसीलिए, अतिरिक्त पानी निकालने के लिए जल-निकासी नालियां स्थापित की

ISSN: 3049-2211

जाती हैं। देश के कुछ हिस्से लवणीयता और क्षारीयता से प्रभावित हैं। लवणीय मिट्टी में सोडियम और पोटैशियम कार्बोनेट की अधिकता के कारण पौधों की वृद्धि नहीं हो पाती। ऐसे पौधे या तो अविकसित रहते हैं या सूखकर खत्म हो जाते हैं। इसी तरह, क्षारीय मिट्टी में पानी लंबे समय तक रुका रहता है, और जब पानी सूखता है तो मिट्टी की सतह कठोर हो जाती है, जिससे दरारें दिखाई देती हैं और अंकुरित होना बहुत कम या मुश्किल हो जाता है। क्षारीय भूमि को लवणीय भूमि की तरह निक्षालन प्रक्रिया से सुधारा जा सकता है। इसके अलावा, जिप्सम का उपयोग करके हानिकारक सोडियम तत्वों को नष्ट किया जा सकता है। साथ ही, गोबर की खाद, हरी खाद, वर्मी-कम्पोस्ट और नील हरित शैवाल को हरी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

निष्कर्ष

बंजर से उर्वर भूमि का सफर केवल एक कृषि कार्य नहीं है, बल्कि यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिक संतुलन का एक अभिन्न अंग है। यदि नीति आयोग के बहु-संस्थागत पहलों और वैज्ञानिक तकनीकों का सही तरीके से क्रियान्वयन किया जाए तो अनुपयोगी भूमि को हरित क्षेत्रों और आर्थिक आय के स्रोतों में बदला जा सकता है भारत में बंजर और ऊसर भूमि को कृषि योग्य बनाना खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण आजीविका के लिए अत्यंत आवश्यक है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मृदा में सुधार, उचित जल निकासी और जैविक कृषि जैसी तकनीकों का उपयोग किया जाता है, लेकिन इसके साथ ही आर्थिक और प्रशासनिक चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। केन्द्र सरकार बंजर भूमि पर फसल उत्पादन की निरंतर कोशिश कर रही है। इसके साथ ही बंजर एवं ऊसर मिट्टी को कृषि योग्य बनाने के लिए प्रयास जारी हैं। यह सच है कि शहरीकरण के चलते पिछले एक दशक में कृषि योग्य भूमि में कमी आई है। विकासशील भारत विकसित बनने की तैयारी में है। गाँवों में शहरों जैसी सुविधाओं का विकास हो रहा है और गांवों में शहर जैसे संसाधन भी बढ़ रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में विकास में सबसे अधिक भूमि का नुकसान हुआ है। कल-कारखाने, स्कूल और स्वास्थ्य केन्द्र सभी खुल रहे हैं। खेती योग्य जमीन का क्षेत्रफल निरंतर घटता जा रहा है, लेकिन दूसरी ओर बंजर और ऊसर भूमि को कृषि योग्य बनाने में महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। कृषि वैज्ञानिकों की सिफारिशों के तहत मृदा संरक्षण की नीति अपनाई जा रही है।

♣♣♣

बायोचार और कार्बन संचयन:
जलवायु परिवर्तन से निपटने की एक प्रभावी रणनीति

आकाश कुमार सैनी- पीएच.डी. शोधार्थी, आईसीएआर–भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान (IISS), भोपाल- मध्य प्रदेश
डॉ. विकास अबरोल- प्रोफेसर, मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू- जम्मू एवं कश्मीर

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन मानव सभ्यता के समक्ष सबसे गंभीर वैश्विक चुनौतियों में से एक है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) की सांद्रता निरंतर बढ़ती हुई 420 ppm के ऐतिहासिक स्तर तक पहुँच चुकी है, जिसके परिणामस्वरूप वैश्विक तापमान में वृद्धि, चरम मौसमी घटनाओं की आवृत्ति तथा प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है। वैश्विक तापमान वृद्धि को 2°C से नीचे सीमित रखने के लिए केवल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी पर्याप्त नहीं होगी, बल्कि वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को हटाने वाली तकनीकों (Carbon Dioxide Removal; CDR) को भी व्यापक स्तर पर अपनाना आवश्यक होगा।

बायोचार एक उभरती हुई, लागत-प्रभावी, पर्यावरण-अनुकूल तथा किसान-केंद्रित CDR तकनीक है, जिसका निर्माण कृषि एवं जैविक अवशेषों के नियंत्रित तापीय अपघटन (पाइरोलिसिस) द्वारा किया जाता है। इसकी विशिष्ट संरचना कार्बन को अत्यंत स्थिर रूप में परिवर्तित कर मिट्टी में 500 से 1,000 वर्षों अथवा उससे अधिक समय तक सुरक्षित रखने में सक्षम बनाती है। अंतर-सरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल (IPCC) की छठी मूल्यांकन रिपोर्ट (AR6) के अनुसार, बायोचार वैश्विक स्तर पर प्रतिवर्ष 0.3–2.0 गीगाटन CO_2 समतुल्य कार्बन संचयन की क्षमता रखता है।

भारत में प्रतिवर्ष 500 मिलियन टन से अधिक कृषि अवशेष उपलब्ध होते हैं, जिनसे अनुमानतः 55–90 मिलियन टन बायोचार का उत्पादन किया जा सकता है। इससे प्रतिवर्ष लगभग 35–60 मिलियन टन CO_2 समतुल्य कार्बन का दीर्घकालिक संचयन संभव है। इसके अतिरिक्त, बायोचार मृदा स्वास्थ्य में सुधार, पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि, जलधारण क्षमता में सुधार तथा फसल उत्पादकता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह लेख बायोचार की कार्बन-संचयन क्षमता, वैज्ञानिक आधार, वैश्विक एवं राष्ट्रीय कार्बन बाज़ारों में इसकी भूमिका, नीतिगत संभावनाओं तथा किसानों को प्राप्त होने वाले कार्बन क्रेडिट लाभों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भूमिका: जलवायु संकट और कृषि का दोहरा दायित्व

जलवायु परिवर्तन आज केवल एक पर्यावरणीय समस्या नहीं, बल्कि खाद्य सुरक्षा, जल संसाधनों, जैव विविधता तथा मानव आजीविका के लिए एक गंभीर वैश्विक चुनौती बन चुका है। वैज्ञानिक आकलनों के अनुसार पृथ्वी का औसत तापमान पूर्व-औद्योगिक काल की तुलना में लगभग 1.2°C बढ़ चुका है। यदि वर्तमान उत्सर्जन प्रवृत्ति जारी रहती है, तो इस शताब्दी के अंत तक वैश्विक तापमान में 3–4°C तक वृद्धि हो सकती है, जिसके परिणामस्वरूप सूखा, बाढ़, गर्मी की लहरें, फसल विफलता तथा पारिस्थितिक तंत्रों का व्यापक क्षरण देखने को मिल सकता है।

कृषि क्षेत्र इस संकट का सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र होने के साथ-साथ ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी है। वैश्विक स्तर पर कुल ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कृषि, वानिकी एवं भूमि उपयोग

ISSN: 3049-2211

क्षेत्र (AFOLU) का योगदान लगभग 23 प्रतिशत है। भारत में कृषि क्षेत्र से प्रतिवर्ष लगभग 620 मिलियन टन CO_2 समतुल्य उत्सर्जन होता है, जिसमें धान की खेती से मीथेन (CH_4), नाइट्रोजन उर्वरकों के उपयोग से नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) तथा फसल अवशेषों के दहन से होने वाला उत्सर्जन प्रमुख योगदानकर्ता हैं।

हालाँकि, कृषि केवल समस्या का हिस्सा नहीं है; यह समाधान का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम बन सकती है। मृदा को पृथ्वी का सबसे बड़ा स्थलीय कार्बन भंडार माना जाता है, और इसके माध्यम से वायुमंडलीय कार्बन को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसी संदर्भ में बायोचार एक अत्यंत प्रभावशाली तकनीक के रूप में उभरकर सामने आया है। कृषि अवशेषों से निर्मित यह कार्बन-समृद्ध पदार्थ न केवल वायुमंडलीय CO_2 को स्थायी रूप से मिट्टी में संचित करता है, बल्कि मृदा की उर्वरता, जलधारण क्षमता तथा सूक्ष्मजीव गतिविधियों में भी सुधार करता है।

बायोचार की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह किसान को केवल खाद्यान्न उत्पादक ही नहीं, बल्कि "कार्बन संरक्षक" (Carbon Steward) के रूप में स्थापित करता है। बायोचार आधारित कृषि प्रणाली में किसान फसल उत्पादन के साथ-साथ कार्बन क्रेडिट अर्जित कर अतिरिक्त आय भी प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार बायोचार जलवायु परिवर्तन शमन, मृदा स्वास्थ्य संवर्धन तथा किसानों की आय वृद्धि—तीनों लक्ष्यों को एक साथ प्राप्त करने की क्षमता रखता है।

"बायोचार उन चुनिंदा कार्बन डाइऑक्साइड निष्कासन तकनीकों में से एक है जो जलवायु परिवर्तन के शमन के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य, कृषि उत्पादकता और ग्रामीण आजीविका को भी सुदृढ़ बनाती है।"

वैश्विक एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य: प्रमुख आँकड़ों की झलक

जलवायु परिवर्तन की गंभीरता तथा बायोचार की संभावनाओं को समझने के लिए कुछ महत्वपूर्ण वैश्विक एवं राष्ट्रीय आँकड़ों पर दृष्टि डालना आवश्यक है। ये आँकड़े दर्शाते हैं कि बायोचार कार्बन संचयन और जलवायु परिवर्तन शमन की एक प्रभावी तकनीक के रूप में उभर रहा है।

आरेख 1. जलवायु परिवर्तन एवं बायोचार से जुड़े प्रमुख आँकड़े

संकेतक	वर्तमान स्थिति
वायुमंडलीय CO_2 सांद्रता (2024)	लगभग 420 ppm
पूर्व-औद्योगिक काल की तुलना में वैश्विक तापमान वृद्धि	लगभग +1.2°C
बायोचार की संभावित वार्षिक कार्बन निष्कासन (CDR) क्षमता	0.3–2.0 Gt CO_2/वर्ष
भारत में उपलब्ध वार्षिक फसल अवशेष	500 मिलियन टन से अधिक
संभावित बायोचार उत्पादन	55–90 मिलियन टन/वर्ष
संभावित कार्बन संचयन क्षमता	35–60 मिलियन टन CO_2/वर्ष
बायोचार एवं कार्बन क्रेडिट से संभावित अतिरिक्त आय	₹30,000–50,000 प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष*
भारत का नेट-ज़ीरो उत्सर्जन लक्ष्य	वर्ष 2070

इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि भारत के पास कृषि अवशेषों के विशाल भंडार के रूप में एक महत्वपूर्ण संसाधन उपलब्ध है, जिसे बायोचार उत्पादन में परिवर्तित कर जलवायु परिवर्तन शमन, मृदा स्वास्थ्य सुधार तथा किसानों की आय वृद्धि के लिए उपयोग किया जा सकता है।

जलवायु समस्या और बायोचार समाधान: वैज्ञानिक दृष्टिकोण

बायोचार की जलवायु-शमन क्षमता को समझने के लिए समस्या, समाधान और उसके परिणामों को एकीकृत रूप में देखना आवश्यक है।

आरेख 2. जलवायु संकट से कार्बन-न्यूट्रल भविष्य तक: बायोचार की भूमिका

समस्या (Problem)	बायोचार समाधान (Solution)	परिणाम (Outcome)
वायुमंडल में CO_2 की बढ़ती सांद्रता (420 ppm)	बायोचार कार्बन को मिट्टी में स्थायी रूप से संचित करता है	500–1000 वर्षों तक कार्बन सुरक्षित
कृषि भूमि में जैविक कार्बन की कमी (<0.5%)	बायोचार से मृदा कार्बन में 60–130% तक वृद्धि	दीर्घकालिक मृदा उर्वरता
फसल अवशेष जलाने से GHG उत्सर्जन एवं प्रदूषण	अवशेषों का पाइरोलिसिस कर बायोचार उत्पादन	उत्सर्जन में कमी एवं कार्बन क्रेडिट
सूखा, बाढ़ एवं चरम मौसम की घटनाएँ	जलधारण क्षमता में वृद्धि तथा मृदा सुधार	जलवायु-लचीली एवं टिकाऊ खेती

ISSN: 3049-2211

IPCC के अनुसार बायोचार प्रतिवर्ष 0.3–2.0 Gt CO_2 को वायुमंडल से हटाने की क्षमता रखता है। यही कारण है कि इसे एक प्रभावी **Carbon Dioxide Removal (CDR)** तकनीक माना जाता है। बायोचार को **Carbon-Negative Technology** कहा जाता है क्योंकि इसके उत्पादन और उपयोग के दौरान जितनी कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जित होती है, उससे कहीं अधिक मात्रा में कार्बन मिट्टी में स्थायी रूप से संचित हो जाता है। परिणामस्वरूप इसका कुल कार्बन संतुलन ऋणात्मक (Negative Carbon Balance) होता है।

कार्बन संचयन की वैज्ञानिक प्रक्रिया- बायोचार कैसे कार्य करता है?

सामान्य परिस्थितियों में जैविक पदार्थों के जलने या विघटित होने पर उनमें उपस्थित अधिकांश कार्बन CO_2 के रूप में वायुमंडल में वापस चला जाता है। इसके विपरीत, पाइरोलिसिस प्रक्रिया जैविक कार्बन को एक स्थायी एवं स्थिर संरचना में परिवर्तित कर देती है, जिसे बायोचार कहा जाता है। मिट्टी में मिलाने पर यह कार्बन सैकड़ों वर्षों तक सुरक्षित रह सकता है। बायोचार की कार्बन-संचयन क्षमता मुख्यतः तीन वैज्ञानिक तंत्रों पर आधारित होती है, जो कार्बन को दीर्घकाल तक मिट्टी में स्थिर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(1) स्थायी कार्बन संरचना (Recalcitrant Carbon Structure): पाइरोलिसिस प्रक्रिया के दौरान बायोचार में सुगंधित (Aromatic) एवं संघनित कार्बन संरचनाएँ विकसित होती हैं। ये संरचनाएँ जैविक, रासायनिक तथा सूक्ष्मजीवी अपघटन के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी होती हैं, जिसके कारण कार्बन लंबे समय तक सुरक्षित रहता है।

(2) भौतिक स्थिरीकरण (Physical Stabilisation): बायोचार की अत्यधिक छिद्रयुक्त (Porous) संरचना कार्बन को सूक्ष्म छिद्रों में संरक्षित रखती है। साथ ही यह मृदा खनिजों और सूक्ष्म कणों के साथ स्थिर बंधन बनाकर कार्बन के संरक्षण को और अधिक सुदृढ़ करती है।

(3) रासायनिक स्थिरीकरण (Chemical Passivation): बायोचार मृदा के pH, रेडॉक्स क्षमता तथा रासायनिक संतुलन को प्रभावित करता है, जिससे जैविक पदार्थों के विघटन की दर कम हो जाती है। परिणामस्वरूप कार्बन का खनिजीकरण धीमा पड़ता है।

बायोचार बनाम अन्य CDR तकनीकें — तुलनात्मक विश्लेषण

जलवायु परिवर्तन के शमन हेतु अनेक Carbon Dioxide Removal (CDR) तकनीकें विकसित की गई हैं। लागत, क्षमता और सह-लाभों के आधार पर बायोचार एक अत्यंत प्रभावी विकल्प के रूप में उभर रहा है।

तालिका 3. प्रमुख कार्बन डाइऑक्साइड निष्कासन (CDR) तकनीकों की तुलना

CDR विधि	CO_2 क्षमता (Gt/वर्ष)	लागत ($/t CO_2)	प्रमुख सह-लाभ	भारत में संभावना
वृक्षारोपण (Afforestation)	0.5–3.6	5–50	जैव विविधता संरक्षण, भूजल संवर्धन	उच्च
बायोचार (Biochar)	0.3–2.0	30–120	मृदा स्वास्थ्य सुधार, उत्पादकता वृद्धि	बहुत उच्च
ब्लू कार्बन (Blue Carbon)	0.5–1.5	50–100	मत्स्य संसाधन एवं तटीय संरक्षण	मध्यम
BECCS	0.5–5.0	100–200	ऊर्जा उत्पादन एवं कार्बन संचयन	सीमित
प्रत्यक्ष वायु ग्रहण (Direct Air Capture)	0.1–1.0	250–600	उच्च शुद्धता CO_2 प्राप्ति	बहुत सीमित
मृदा कार्बन संचयन (Soil Carbon Sequestration)	0.9–1.85	0–100	मृदा उर्वरता एवं जलधारण क्षमता में सुधार	उच्च

भारत में बायोचार-आधारित कार्बन संचयन की राज्यवार संभावनाएँ

भारत की विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियाँ बायोचार उत्पादन एवं कार्बन संचयन के लिए अत्यंत अनुकूल हैं। पंजाब की धान पराली से लेकर महाराष्ट्र के कपास अवशेष तथा मध्य प्रदेश के सोयाबीन अवशेष तक, लगभग प्रत्येक कृषि क्षेत्र में बायोचार उत्पादन हेतु पर्याप्त जैविक संसाधन उपलब्ध हैं।

ISSN: 3049-2211

तालिका 4. भारत में राज्यवार बायोचार उत्पादन एवं CO_2 संचयन क्षमता

राज्य	प्रमुख फसल अवशेष	अनुमानित बायोचार उत्पादन (Mt/वर्ष)	CO_2 संचयन क्षमता (Mt/वर्ष)	प्राथमिकता
पंजाब	धान पराली	5.5–7.0	3.5–5.0	उच्च
हरियाणा	गेहूँ एवं धान भूसा	4.0–5.5	2.5–4.0	उच्च
उत्तर प्रदेश	गन्ना, गेहूँ, धान	8.0–12.0	5.0–8.0	बहुत उच्च
महाराष्ट्र	कपास, सोयाबीन	5.0–7.5	3.0–5.0	उच्च
मध्य प्रदेश	सोयाबीन, गेहूँ	4.5–6.0	2.8–4.2	उच्च
बिहार	धान, मक्का	3.0–4.5	1.9–3.0	मध्यम
राजस्थान	बाजरा, सरसों	2.0–3.5	1.3–2.4	मध्यम
आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना	धान, मक्का	3.5–5.0	2.2–3.5	उच्च
कर्नाटक	मक्का, रागी, कॉफी अवशेष	2.5–4.0	1.6–2.8	मध्यम
कुल भारत (अनुमान)	सभी फसल अवशेष	55–90	35–60	विशाल

कार्बन क्रेडिट: बायोचार से किसानों की नई आय का स्रोत

कार्बन क्रेडिट एक ऐसा वित्तीय प्रमाणपत्र है जो दर्शाता है कि किसी व्यक्ति, संस्था या परियोजना ने एक टन CO_2 समतुल्य उत्सर्जन को कम किया अथवा वायुमंडल से हटाया है। बायोचार उत्पादन एवं उसका मृदा में उपयोग कार्बन को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखता है, इसलिए यह कार्बन क्रेडिट अर्जित करने का एक प्रभावी माध्यम बन सकता है।

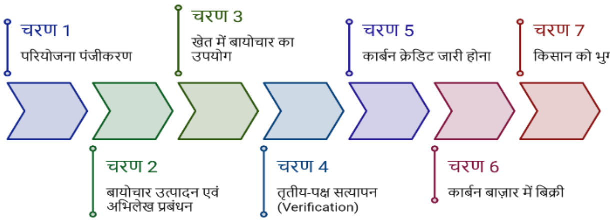

चित्र 1. बायोचार आधारित कार्बन क्रेडिट अर्जन की प्रक्रिया

नीतिगत ढाँचा: अंतरराष्ट्रीय समझौते और भारत की प्रतिबद्धताएँ

जलवायु परिवर्तन शमन की वैश्विक रणनीतियों में बायोचार को तेजी से महत्व प्राप्त हो रहा है। अनेक अंतरराष्ट्रीय समझौतों एवं राष्ट्रीय नीतियों में इसे कार्बन संचयन और जलवायु-स्मार्ट कृषि के एक संभावित साधन के रूप में देखा जा रहा है।

तालिका 5. बायोचार से संबंधित प्रमुख नीतियाँ एवं अंतरराष्ट्रीय समझौते

नीति / समझौता	मुख्य प्रावधान	बायोचार की प्रासंगिकता
Paris Agreement (2015)	वैश्विक तापमान वृद्धि को 1.5–2°C तक सीमित करना; NDC लक्ष्य	कार्बन डाइऑक्साइड निष्कासन (CDR) तकनीकों के अंतर्गत संभावित योगदान
भारत NDC (2022)	वर्ष 2070 तक नेट-ज़ीरो उत्सर्जन का लक्ष्य	कृषि-आधारित कार्बन संचयन के लिए उपयोगी विकल्प
IPCC AR6 (2022)	जलवायु लक्ष्यों हेतु CDR तकनीकों की आवश्यकता	बायोचार की 0.3–2.0 Gt CO_2/वर्ष संचयन क्षमता का उल्लेख
National Agroforestry Policy	कृषि प्रणालियों में कार्बन संचयन को बढ़ावा	बायोचार एवं वृक्षारोपण का संयुक्त लाभ
Draft Carbon Market Rules (2023)	भारतीय कार्बन बाज़ार का विकास	कृषि क्षेत्र एवं बायोचार परियोजनाओं के लिए संभावित अवसर
UN Sustainable Development Goals (SDGs)	SDG-2, SDG-13 एवं SDG-15 की प्राप्ति	खाद्य सुरक्षा, जलवायु कार्रवाई एवं भूमि संरक्षण में योगदान

उपरोक्त नीतिगत एवं अंतरराष्ट्रीय ढाँचे यह संकेत देते हैं कि बायोचार केवल एक मृदा संशोधक नहीं, बल्कि जलवायु परिवर्तन शमन, कार्बन संचयन तथा सतत कृषि विकास का एक महत्वपूर्ण साधन बन सकता है। भारत की नेट-ज़ीरो प्रतिबद्धताओं और उभरते कार्बन बाज़ारों के संदर्भ में बायोचार आधारित परियोजनाओं के लिए अनुकूल वातावरण विकसित हो रहा है। यदि कृषि अवशेष प्रबंधन, कार्बन क्रेडिट और मृदा स्वास्थ्य सुधार को एकीकृत रूप से अपनाया जाए, तो बायोचार भविष्य में भारत की जलवायु-स्मार्ट कृषि रणनीति का एक महत्वपूर्ण घटक बन सकता है।

ISSN: 3049-2211

चुनौतियाँ और संभावित समाधान

बायोचार-आधारित कार्बन संचयन एवं कार्बन क्रेडिट प्रणाली की अपार संभावनाओं के बावजूद इसके व्यापक प्रसार में कुछ तकनीकी, आर्थिक एवं संस्थागत चुनौतियाँ मौजूद हैं। उचित नीतिगत समर्थन और क्षमता निर्माण के माध्यम से इनका प्रभावी समाधान किया जा सकता है।

चुनौती	संभावित समाधान
कार्बन लेखांकन की जटिलता	IPCC-आधारित मानकीकृत कार्य प्रणालियाँ, स्वचालित मृदा सेंसर तथा तृतीय-पक्ष सत्यापन को बढ़ावा दिया जाए।
किसानों में जागरूकता का अभाव	KVK, MANAGE, ATMA एवं FPO के माध्यम से प्रशिक्षण एवं जागरूकता कार्यक्रम संचालित किए जाएँ।
पंजीकरण एवं सत्यापन लागत अधिक	FPO/SHG स्तर पर सामूहिक पंजीकरण तथा NABARD जैसी संस्थाओं द्वारा सहायता प्रदान की जाए।
Additionality सिद्ध करने में कठिनाई	आधारभूत मृदा कार्बन अध्ययन, रिमोट सेंसिंग एवं डिजिटल निगरानी प्रणालियों का उपयोग किया जाए।
कार्बन स्थायित्व (Permanence) का जोखिम	भूमि उपयोग समझौते, बायोचार रजिस्ट्री एवं जोखिम बीमा तंत्र विकसित किए जाएँ।
कार्बन क्रेडिट मूल्य में उतार-चढ़ाव	दीर्घकालिक खरीद अनुबंध, बफर पूल एवं मूल्य सुरक्षा तंत्र विकसित किए जाएँ।

निष्कर्ष: बायोचार — जलवायु का 'काला सोना'

जलवायु परिवर्तन की चुनौती के बीच बायोचार एक ऐसी तकनीक के रूप में उभर रहा है जो पर्यावरण संरक्षण और कृषि विकास को एक साथ जोड़ती है। यह केवल कार्बन संचयन का साधन नहीं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य सुधार, जल संरक्षण, फसल उत्पादकता वृद्धि तथा किसानों की आय बढ़ाने का एक बहुआयामी समाधान है।

जब किसान फसल अवशेषों को जलाने के स्थान पर उनका उपयोग बायोचार उत्पादन में करता है, तब वह प्रदूषण को कम करने के साथ-साथ वायुमंडलीय कार्बन को दीर्घकाल के लिए मिट्टी में सुरक्षित करता है। इस प्रक्रिया से प्राप्त कार्बन क्रेडिट अतिरिक्त आय का स्रोत बन सकते हैं, जिससे जलवायु-अनुकूल कृषि आर्थिक रूप से भी आकर्षक बनती है। भारत के लिए बायोचार केवल एक मृदा संशोधक नहीं, बल्कि 2070 के नेट-ज़ीरो लक्ष्य की दिशा में एक महत्वपूर्ण रणनीतिक साधन है।

♣♣♣

जामुन का मूल्य संवर्धन: किसानों की आय बढ़ाने का प्रभावी माध्यम

भरत कुमार- सहायक आचार्य, उद्यान विज्ञान, **मनीष कुमार दुरिया**- पशुधन उत्पादन और प्रबंधन,
नाथजी कृषि महाविद्यालय नाथद्वारा, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

जामुन (*Syzygium cumini* L.) भारत का एक महत्वपूर्ण देशी फल है, जो अपने विशिष्ट स्वाद, औषधीय गुणों एवं उच्च पोषण मूल्य के लिए प्रसिद्ध है। यह फल मुख्यतः वर्षा ऋतु में उपलब्ध होता है और इसकी मांग ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में रहती है। जामुन में एंटीऑक्सीडेंट, आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, विटामिन तथा विभिन्न जैव सक्रिय यौगिक प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी हैं।

हालाँकि जामुन की शेल्फ लाइफ सामान्यतः 2–3 दिन होती है। उचित भंडारण एवं प्रसंस्करण सुविधाओं के अभाव में बड़ी मात्रा में फल खराब हो जाता है, जिससे किसानों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। ऐसी स्थिति में जामुन का मूल्य संवर्धन किसानों की आय बढ़ाने तथा खाद्य अपव्यय को कम करने का एक प्रभावी उपाय बनकर उभरा है।

जामुन का पोषण एवं औषधीय महत्व

जामुन को आयुर्वेद में विशेष महत्व दिया गया है। इसके फल, बीज, छाल तथा पत्तियों का उपयोग विभिन्न औषधीय तैयारियों में किया जाता है। जामुन के नियमित सेवन से मधुमेह नियंत्रण, पाचन सुधार, रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि तथा हृदय स्वास्थ्य को लाभ मिलता है।

मूल्य संवर्धन की आवश्यकता

जामुन की अधिक उत्पादन अवधि सीमित होती है और फल जल्दी खराब हो जाता है। यदि इस फल को सीधे बाजार में बेचने के बजाय प्रसंस्करण कर विभिन्न उत्पादों में परिवर्तित किया जाए, तो इसकी उपयोगिता और बाजार मूल्य दोनों बढ़ जाते हैं। मूल्य संवर्धन के माध्यम से:

- ✓ फल की शेल्फ लाइफ बढ़ाई जा सकती है।
- ✓ किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है।
- ✓ खाद्य अपव्यय कम होता है।
- ✓ ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित होते हैं।
- ✓ स्थानीय स्तर पर उद्यमिता को बढ़ावा मिलता है।

जामुन से बनने वाले मूल्य संवर्धित उत्पाद

1. जामुन जूस एवं हेल्थ ड्रिंक

जामुन का रस स्वादिष्ट एवं पौष्टिक होता है। इसमें प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट एवं विटामिन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के बीच इसकी मांग लगातार बढ़ रही है।

2. जामुन स्क्वैश एवं शरबत

जामुन से तैयार स्क्वैश एवं शरबत लंबे समय तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं। गर्मियों में इन उत्पादों की बाजार मांग अच्छी रहती है।

3. जामुन जैम एवं जेली

जामुन जैम एवं जेली बच्चों से लेकर वयस्कों तक सभी वर्गों में लोकप्रिय हैं। इनके निर्माण से फलों का बेहतर उपयोग संभव होता है।

4. जामुन सिरका

जामुन सिरका स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद के रूप में लोकप्रिय हो रहा है। यह पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक माना जाता है।

5. जामुन पाउडर

जामुन के गूदे एवं बीजों को सुखाकर पाउडर तैयार किया जाता है। इसका उपयोग आयुर्वेदिक एवं न्यूट्रास्यूटिकल उत्पादों में किया जाता है।

6. जामुन कैंडी एवं ड्राई उत्पाद

जामुन कैंडी और सूखे उत्पाद बच्चों एवं युवाओं के बीच लोकप्रिय हैं। इनकी शेल्फ लाइफ अधिक होती है और परिवहन भी आसान रहता है।

किसानों एवं महिला समूहों के लिए अवसर

जामुन आधारित प्रसंस्करण इकाइयाँ ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार का एक अच्छा माध्यम बन सकती हैं। किसान उत्पादक संगठन (FPO), स्वयं सहायता समूह (SHG) तथा महिला समूह कम निवेश में जामुन आधारित उद्योग स्थापित कर सकते हैं। इससे स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन के साथ-साथ किसानों की आय में भी उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है।

एक नया व्यवसाय मॉडल

यदि किसानों को प्रसंस्करण, पैकेजिंग, ब्रांडिंग और विपणन का प्रशिक्षण प्रदान किया जाए, तो वे जामुन आधारित उत्पादों को स्थानीय, राज्य तथा राष्ट्रीय बाजारों में सफलतापूर्वक बेच सकते हैं। आधुनिक ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म और डिजिटल मार्केटिंग के माध्यम से इन उत्पादों की पहुँच और अधिक बढ़ाई जा सकती है।

निष्कर्ष

जामुन केवल एक मौसमी फल नहीं है, बल्कि किसानों की आय बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण साधन भी है। मूल्य संवर्धन तकनीकों को अपनाकर जामुन से अनेक उच्च मूल्य वाले उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं, जिससे खाद्य अपव्यय कम होगा, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलेगी और किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त होगा। वर्तमान समय में जामुन का मूल्य संवर्धन आत्मनिर्भर एवं टिकाऊ कृषि विकास की दिशा में एक प्रभावी कदम सिद्ध हो सकता है।

****

कृषक मंच - जुलाई 2026 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 28 जुलाई 2026

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें:

Whatsaap
Clik to Chat